प्रकाशक : सुरजीत प्रकाशन,
व्यापारियों का मोहल्ला, मुलतानी चिकित्सालय के सामने,
बीकानेर-334 001

मूल्य : पैंसठ रुपये मात्र

सम्पादक : डा. बरपतसिंह सोढा

संस्करण : 1989

मुद्रक : बंसल कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा आकाश प्रिंटर्स, शाहदरा में मुद्रित

सुरजीत प्रकाशन—वीकानेर-334001

अपनी ओर से

धार्मिक अंधविश्वास, सामाजिक रूढ़िया, भाग्यवाद का व्यामोह, पूजीवादी संस्कृति के विकास की सुविधा संग्रह, सुरक्षा व होड की कुप्रवृत्तिया तथा सामाजिक व आर्थिक विषमता ने समाज का जीवन विषम कर दिया है और लगता है सुखी व स्वस्थ समाज के संकल्प की परीक्षा हो रही है। प्रगतिशील विचारधारा इसी संकल्प के साथ सक्रिय है। मनुष्य के स्वभावगत सुख को छीननेवाली आर्थिक व सामाजिक विषमता तथा युद्ध, हिंसा व घृणा के कारण, इस धरती पर मौजूद हैं—इन्हें राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर टटोला-परखा जा सकता है।

कहानी ही क्यो, सम्पूर्ण साहित्य का सरोकार जीवन से है। जीवन मे अधिसंख्य मनुष्य रोजी-रोटी मकान, शिक्षा व चिकित्सा जैसी सामान्य किन्तु अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति में ही संघर्षरत है। दूसरी ओर जो अधिकांश साहित्य सृजित हुआ है उसके अन्तर्गत जो जीवन-दृष्टि व मूल्यबोध रेखांकित किए जा सकते हैं वे सभी पूंजीवादी अराजकता से आक्रांत सांस्कृतिक परिवेश के हैं। यह दुर्भाग्य है कि रचनाकार रूढ़ सांस्कृतिक संस्कारो से अपने को तोडने का प्रयास ईमानदारी से नहीं करता है। अधिकांश रचनाकार अपने घरो मे इस रूढ़ संस्कृति का ही पोषक है जो पूंजीवादी अराजकता को ही प्रोत्साहित करती है।

संग्रह, सुरक्षा तथा होड की बीमार संस्कृति के आवरण मे सम्पन्नवर्ग के साथ-साथ मध्यवर्ग का आदमी यहां तक कि आम आदमी भी लिप्त है। पूंजी आधारित विकृतियों के शिकार आज वे रचनाकार भी है जो अपने को जन-अभिमुखी होने के दावे पर रचना प्रस्तुत कर रहे है और उनका सृजन विपरीत दिशा की ओर गतिशील है। इस प्रकार के टूटे वाले रचनाकारो का लेखन क्या वैज्ञानिक जीवन-दर्शन के लिए प्रेरक हो सकता है! क्या इस वर्ग के लेखको की रचना वस्तु मे भी आज के परिवेश के प्रति सहज भावात्मक तादात्म्य, समाज की अन्तर्वस्तु की इकाइयों तक पहुंचने के गंभीर अर्न्तसंवेग हैं? समाज, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्विरोधो को दूर लेकर हुआ की है? वस्तुत लेखन की बुनियादी समझ और वैचारिकता की परख लेखक को करनी चाहिए।

प्रगतिशील को भी आज प्रगति के दिखावे से नहीं वरन् रचना के वैचारिक धरातल से पहचाना जाए। यह कहने के लिए लोकप्रियता बटोरने के लिए कही रचना में सामाजिक-आर्थिक विषमता के अंतर्विरोध उभरते भर हैं तो प्रयोग नहीं हुआ है? लेकिन कि रचना मे रचनाकार करते हैं वर्ग के बारे मे [illegible] निर्दिष्ट करने [illegible] को हेय [illegible] दृष्टि

से या अपूर्ण मनुष्य के रूप में और अपने से समक्ष लोगों के समक्ष याचक बना उनके
सुख-सुविधाओं के हितों की ही रक्षा तो नहीं कर रहा है ? इस समस्त छल के प्रति सतर्क
होकर संकुल, आक्रांत जैसा भी परिवेश है उससे जूझते हुए मनुष्य को स्थापित करना
ही प्रगतिशीलता का संकल्प है। रचना की वस्तु वैचारिकता के स्तर पर रूढ़ संस्कारों
से अपने को तोड़ने का चटक स्वाद देनी चाहिए।

हिन्दी कहानी आज नयी कहानी या नयी कविता की पूंजी आक्रांत सौन्दर्यवादी
दृष्टि से अपने को तोड़कर प्रगतिशील वैचारिक धरातल पर स्थापित होने का जहां-जहां
प्रयास कर रही है, उन प्रयासों में राजस्थान के अनेक कहानीकारो के भी प्रयास हुए हैं।
ऐसे समकालीन कहानीकारों की कहानियां इस सकलन मे हैं।

हमारा विचार राजस्थान के कहानीकारो का अब तक प्रकाशित उन सभी कहानियां
को इस संकलन में संकलित करने का था जो समय-समय पर अपनी श्रेष्ठता के कारण
चर्चित रहीं और जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुयी है, जिससे राजस्थान के
कहानीकारो की कहानियों का ऐतिहासिक मूल्यांकन सभव हो जाता लेकिन अल्प समय
को देखते हुए यह कार्य स्थगित करना पड़ा। इसलिए समकालीन कहानीकारो के सृजन
को ही इस सकलन का आधार बनाया जा सका। यद्यपि कुछ चर्चित कहानीकारो की
कहानियां इस सकलन में कुछ कारणों से सकलित नहीं हो सकी हैं तथापि हमारा प्रयास
व अनुरोध सभी कहानीकारो से रहा है।

सकलन को जयपुर में आयोजित प्रगतिशील लेखक महासघ के तीसरे राष्ट्रीय
अधिवेशन (25, 26, 27 दिसम्बर 82) के अवसर पर प्रकाशित होना था…अब
आपके हाथों में सौंप रहा हूं। राजस्थान प्रगतिशील लेखक सघ, जयपुर के महामंत्री
श्री वेदव्यासजी ने मुझे यह कार्य सौंपा, यही नहीं इसको पुस्तकाकार रूप देने के लिए
जितनी चिंता श्री व्यासजी की रही उसे शब्दों मे वर्णित करना मेरे लिए दुष्कर है
इसलिए इसके पुस्तकाकार रूप के पाने पर मैं श्री वेदव्यासजी का केवल आभार
प्रदर्शन करके भी उऋण नहीं हो सकता। हां सकलन के सभी कहानीकारो का और
प्रकाशक श्रीकृष्ण जनसेवी के सहयोग को याद किये बिना भी बात अधूरी होगी, क्योंकि
इन सभी के सहयोग के कारण ही मैं यह दायित्व पूरा कर पाया हूं, अत. इन सभी के
आभार सहित।

० नरपत सिंह सोढ़ा

हनुमान हत्था
बीकानेर।

क्रम

हमला

० स्वयं प्रकाश

०००

जुमेंदीन आ रहे हैं।

वही हमेशा वाला पट्टे का पाजामा, आगे दो ठसाठस भरी जेबों वाली लट्ठे की मैली कमीज, चार दिन की बढ़ी हुई चितकबरी हजामत, बिखरे बाल, मुह मे बीडी और पावों मे टायर की फटीचर चप्पल। उनकी आखो मे अकेले सबको ऐसी-तैसी कर देने वाली मस्ती है। चलते समय इधर-उधर, आगे-पीछे नही देखते। ···कराची की चिकनी-चोड़ी सड़कें देखते है या अडतालीस मे जल चुकी उसके बाप नाजुद्दीनखान की दूकान...या लाहौर की कमसिन मगर गद्दर तवायफो के चिकने चूडीदार पायजामे। या और कुछ। इन्सान की जिन्दगी मे हजारो याद रखने लायक बातें होती हैं। मैं भरोसे मे नहीं कह सकता कि वह क्या देखते हैं, पर यह तय है कि जिस सडक पर चल रहे होते है उसे तो वह नही ही देखते।

वह मेरे पास आते है। फर्श पर बैठ जाते हैं। बीडी सुलगाते हैं। दो-चार कश खींचकर मौसम पर एकाध फिकरा मारते हैं और इन्तजार करने लगते हैं कि कब मैं पूछूं—कहो जुमेंदिन, कैसे आये? और वह अपना मतलब बतायें। इस बार भी उन्होंने ठीक यही, ऐसे ही किया। आकर बैठ गये, बीडी सुलगाये दो-चार भरे-पूरे कश लेकर बोले—गरमी बहुत है। और सिर झुकाकर बैठ गये। मैंने आने का सबब पूछा तो जेब से एक पोस्टकार्ड निकालकर मेरी तरफ बढा दिया—जरा पढो इसे।

पाकिस्तानी पोस्टकार्ड था। साफ उर्दू खुशखत से ठसाठस भरा हुआ। मैं जानता था कि वह खत किसने लिखा है और इसमे क्या लिखा हुआ होगा। बगैर पढे मैंने कार्ड एक तरफ रख दिया और शून्य मे देखने लगा।

जुमेंदीन मेरे घर के पीछे ही रहते हैं। मकान बनाने वाले ठेकेदार रमजानमिश्रा के पास मिस्त्री हैं। बीवी इधर-उधर के रजाई गद्दों में डोरे डाल देती है। घर में एक जवान बेटी और बेटा है, तीन साल से नवीं मे फेल हो रहा है। कभी इन लोगों ने भी अच्छे दिन देखे थे। बटवारे के बाद यहीं रह गये। अब खस्ताहाल है। जब कमठा चलता है, आमदनी हो जाती है। घर के खाली टिन कनस्तर भर जाते है। चेहरों पर रौनक आ जाती है। रात को हँसना-बोलना सुनाई आता है। कुछ कपडे जूते की खरीदारी भी हो जाती है। पर कमठा कितने दिन चलता है। चौमासे मे बारीश की वजह से काम बन्द और गर्मियो में पानी की कमी की वजह से काम बन्द। और सर्दियों

सुबह का वक्त था। जुमंदीन छीलें चढवा रहे थे। जैसे थे, वैसे ही, वहीं बैठ गये। बीडी निकालकर चार-पांच बडे-बडे कश खींचे। पहले तो उन्हे यकीन ही नहीं आया। लेकिन बेलदार कह रहा था उसने खुद रेडियो पर सुना। और लोगो ने भी कहा। चारो तरफ लडाई की ही बातें हो रही थी। सुना रात को एक साथ बारह जगह बमबारी हुई। और भी जाने क्या-क्या। जुमंदीन की आखो मे अधेरा-सा छा गया।

जुमंदीन ने सोचा अब ब्लैकआउट हो जायगा और रात का कमठा चलना बद हो जायगा। दूसरा ख्याल यह आया कि अब मस्जिद के गिर्द सी० आई० डी० वाले घूमेंगे और लाउडस्पीकर की अजानें बन्द हो जाएगी। तीसरा यह कि मिलने वाले रोज के मुलाकाती, मुसलमानो के अलावा हर आदमी उन्हे शक की निगाह से देखने लगेगा, जैसे मानो हमला पाकिस्तान ने नही, जुमंदीन ने ही किया हो या जुमंदीन ने उन लोगो से कहकर करवा दिया हो। अब वह जिधर से निकलेंगे बडी बेबाकी और बेहूदगी से लोग उन्हे घूरेंगे और कमनट कसेंगे। उनके हगने-मूतने सब पर कडी नजर रखी जाएगी। अच्छे कपडे पहनकर बाजार से निकलना दुश्वार हो जाएगा। और अपनी वफादारी का सबूत देने के लिए जगह-जगह हाथ मारकर फिर उसी 'गोरमिंट' की तारीफ भी करनी पडेगी, जिससे वे जरा भी खुश नही है। चौथा खयाल यह आया कि जिन-जिन से उधार ले रखा है, कही से भी, कैसे भी, चुकाना पडेगा। कइयो को खामखा सलाम भी ठोकना पडेगा। और उन वकील साहब के घर जाकर लैट्रीन-बाथरूम के पलस्तर का काम भी कर आना पडेगा जो मजदूरी का एक पैसा भी नही देंगे। वरना मुसलमान .. चाहे उसके घर रोटी भी न हो...एक तेज टॉर्च जरूर रखता है जो पाकिस्तानी हवाईजहाजो को अन्धेरे मे भी पहचानकर वह जला देता है और उन्हें दावत देता है कि आओ, और मेरे घर पर, मेरे बाल-बच्चों पर बम डाल जाओ। वह ऐसा न भी करे'''एतियातन उसे गिरफ्तार कर लेना जरूरी होता है'''सिर्फ इसलिए कि वह मुसलमान है।

शर्म, नफरत और हिकारत से जुमंदीन का तन-बदन जलने लगा। या खुदा! या तो जिन्दा रहने की मजबूरी न देता'''या अपनी जमीन, अपने पुरखो का वतन छोड़-कर न भागने का यह ईनाम न देता।

और इतना सब सोच चुकने के बाद उन्हे खयाल आया—जमीला! अब जमीला का क्या होगा?

उस रात वह बार बार अपनी परेशान बीवी को तसल्लियां देते रहे थे कि ये लडाई-झगडे तो दस-पाच रोज के होते है। चलते ही रहते है। आज लडेंगे, कल हाथ मिला लेंगे। भाई-भाई आखिर कितने रोज लडते रह सकते है। सबर से काम लो, सब ठीक हो जाएगा। लेकिन कुछ था जो आस पास के सारे माहौल को जमा गया था। सन्नाटा टूट नही रहा था। मनहूसियत छिद नहीं रही थी। अल्फाज अपनी तासीर खो चुके थे। माहौल मे हरकत और हरारत पैदा करने की यह कोशिश मुनासिब

को और ज्यादा दहशत-अंगेज बना देती थी। दोनों भाभियों से लड़ते रहे थे और इन सबसे बेखबर गोरी यहाँ अपनी बेटी के नसीबों के बारे में सोच रहे थे।

चिट्ठी-पत्री, आवाजाही, तार-टेलीफोन सब बन्द हो गये। कयास रह गये सिर्फ। यहां और वहां के बीच दो दुनियाओं का फासला हो गया। इधर की दुनिया अलग, उधर की दुनिया अलग।

खैर, फिर लड़ाई भी खत्म हुई, लेकिन सम्पर्क टूटा रहा।

× × ×

चार साल बाद एक दिन कुवैत की सैर करता हुआ जुम्मेदीन के बड़े भाई का एक खत आया जिसमें बाद दुआ सलाम, राजी-खुशी यह खबर थी कि हमीद साहबजादे जमीला के मगनेर-दगर्या में दो बार फेल हो चुके हैं, सो बुजुर्गों ने अन्दाजा लगाया कि शायद तालीम इनके नसीब में है ही नहीं, लिहाजा, मदरसे को खुदाहाफिज और चन्द ही रोज में फला मामू की मदद से डाकखाने में नौकरी भी मिल गयी है। मेसेन्जर हो गये हैं। तनख्वाह अस्सी रुपये हर महीने पाने लगे हैं जो सीधे लाकर अपनी मां के हाथ पर धर देते हैं। मेहनत और लगन से काम करते रहे तो इंशाअल्ला तीन चार साल में पोस्टमैन हो जायेंगे।

उसी दिन जमीला ने आकर मां को बताया कि सलमा के यहां से लौटते वक्त मुए हाजीसाहब के लड़के ने उसका हाथ पकड़ लिया और 'मेरी जान' भी कहा।

जमीला की मां की छाती बैठ गयी। ऊपर से नीचे तक अपनी लड़की को घूरकर देखा कि इस मरदुई ने ऐसा क्या पैदा हो गया कि बड़े घरों के लड़के सड़क पर ही पकड़ने लगे! ध्यान से देखा तो पाया कि वाकई कुछ है जो कभी उनमें भी यूं ही हुआ करता था कि जुम्मेदीन ने अपने गारे-चूने में सने हाथों से ही उनके गाल पकड़कर उन्हें चूम लिया था और घंटे भर तक वह थूकती रही थी, कुल्ले करती रही थी, कि मुंह से बीड़ी की बदबू निकल जाये और कोई शक न करे। बाद में कुल्ले को पानी मुंह में भरती और चुपचाप पी जाती। पर कितना दबे-ढके और चोरी-छिपे होता था यह सब। खूब जमाना आया है कि आबदस्त की तमीज नहीं, बीच सड़क पर शरीफ घर की लड़कियों का हाथ पकड़ने लगे। और मेरी जान!! मुंहझौंसा!! बम्बई की हवा का ये असर! पैसे का इतना गरूर! आग लगे मेरे हाजी की आयसा मजिस में। पर यह भी तो निगोड़ी कम नहीं। दिन भर कुदक्कड़े लगाती रहती है। जरूर इसने भी कुछ लटक-मटक की होगी। या अल्ला! किसी ने देखा न हो! लोग तो हमें बरबाद करने की ताक में ही बैठे हैं।

इसलिए जब रात को जुम्मेदीन ने घर पहुंचकर हमीद मियां की नौकरी लगने की बात जमीला की मां को सुनायी तो जमीला की मां को समझ में नहीं आया कि हंसे या रोये। हाजी वाले लड़के की बात अभी तक परेशान कर रही थी। जुम्मेदीन भांप गये कि कुछ गड़बड़ जरूर है। पूछा! फिर पूछा! फिर नहीं पूछा! ज्यादा ही कुछ न मान लें इसलिए जमीला की मां ने घबराकर सारी बात बता दी। जुम्मेदीन ने चुपचाप

सुना, बीड़ी के चार-पांच लम्बे-लम्बे कश छाती में भरे और चुपचाप करवट बदलकर सो गये।

दूसरे दिन ही जुम्मेदीन ने भाईजान को खत लिखवाया कि अब ज्यादा सबर नामुमकिन है। जैसे भी हो, दो चार लोग आ जायें और निकाह कराकर जमीला को ले जावें। इधर जमीला पर और पहरे और परदे, और हिदायतें हो गयीं। मां-बाप ने सोचा कि हाजी का लड़का बम्बई से आया है, कुछ रोज में वापस चला जायेगा। तब तक एहतियात बरत लो, फिर कुछ नहीं। पर गरीब की बेटी घर से न निकले तो काम कैसे चले? बाप सुबह कमठे पर चला जाता है तो शाम को घर लौटता है। भाई ने स्कूल छोड़ ही दिया, छूट गया। अब पत्थर का काम सीखने जाता है और वहां से आता है तो नब्बू की होटल पर जा बैठता है, दादागिरी करता है, या दोस्तों के साथ ताश खेलता रहता है। मां रजाइयों-गद्दों में लगी रहती है। दो-दो पैसे के सौदा-सुलफ के लिए कौन बचा? जमीला ही न? फिर ऐसा भी क्या डरना? कोई खा तो नहीं जायगा। जमीला को समझा दिया गया कि अबकी से छेड़खानी करे तो देना एक जूती मुए के सिर पर खींचकर। सारी आशिकी हवा हो जाएगी।

अब होता लेकिन यह कि रोज जमीला बाहर निकलती रोज कहीं न कहीं हाजी का लड़का मिल ही जाता रोज वह छेड़ता। कभी फिकरे कसता कभी मुंह पर सिगरेट का धुआं छोड़ता कभी भद्दे इशारे करता, कभी दिल थामकर हवा में बाहें फैलाता। रोज जमीला सोचती आज तो साले के मुंह पर जूती मारनी ही है पर उसे देखते ही जमीला की सारी हिम्मत काफूर हो जाती, पैर भारी हो जाते धड़कन शुरू हो जाती, कान जलने लगते, जिस्म ढीला पड़ने लगता। एक बार यही हिम्मत करके कहा भी—शरम नहीं आती? तो इस पर वह इतनी जोर से खिलखिलाकर हंसा कि जमीला सरपट भाग गयी। हो यह रहा था कि अब हाजी के बेटे का छेड़ना अब उसे अच्छा लगने लगा था। खूबसूरत है, हट्टा-कट्टा है, पैसे वाला है। मोहल्ले में और भी तो लड़कियां हैं और किसी को क्यों नहीं छेड़ता? इतनी तारीफ करता है तो कुछ तो मुझमें होगा ही। हाय! कितनी प्यारी हंसी है उसकी। जी चाहता है हर वक्त वह हंसता ही रहे। उम्र के, देह के भी तकाजे होते हैं। अब जमीला को उस पर किसी दिन गुस्सा आते, प्यार आता। वह छेड़े जाने के कारण बार-बार उधर से निकलती। कभी नहीं निकलता तो उदास हो जाती। फिक्र होने लगती कि कहीं उसे कुछ हो न गया हो।

जमीला गुमसुम रहने लगी। मन में तूफान उठने लगे। [illegible] के सामने है, इतना चाहता है पैसे वालों में कुछ तो बुरी आदतें होती ही हैं। [illegible] जमीला अपने प्यार से सुधार लेगी। कितनी जरूरत है उसे किसी के प्यार की, किसी के सहारे की। जमीला उसे सहारा देगी। अपने आंचल से [illegible]। [illegible] लोग बुरा कहते हैं, सब उसी की तारीफ करने लगेंगे [illegible] और दूसरी तरफ है वह [illegible], जिसकी शक्ल-सूरत तक जमीला को पसंद नहीं। [illegible] कभी अच्छे लगते हैं। [illegible] नहीं कैसा निकम्मा है। [illegible]

जाने कैसा होगा ! और जैसा भी होगा, क्या अब तक उसी के लिए बैठा होगा ? पाकिस्तान मे जवान लड़किया नही होती क्या ? पता नही कितनो से फस चुका हो। मर्दों का क्या भरोसा ! इससे तो यही···यही अगर निकाह पढ ले तो क्या हर्ज है ? दिन में मां के साथ काम करेगी, इसकी रोटी पका जाया करेगी, सीना-पीरोना कर देगी, शाम को ससुराल चली जाएगी। एक तो मोहल्ले मे पीहर भी हो, ससुराल भी इसमे अच्छा क्या हो सकता है ? अब्बा को भी तसल्ली रहेगी कि बेटी आखो के सामने है। वहा पाकिस्तान से कौन आने देगा ? चाहे मरो, चाहे जलो, कौन देखने आयेगा ?

पर वह गाली क्यों बकता है ? और कुछ काम क्यो नही करता ? बस, गाली बकना छोड दे और कुछ काम करने लगे, तो लाखों मे एक है। बस। खैर वह जमीला उससे करवा लेगी।

× × ×

एक दिन मोहल्ले मे सिनेमा की गाडी आयी। चौराहे की सड़क बत्ती पर बास की मदद से टाट का बोरा ढक दिया गया और हाजी के घर से तार खीचकर मशीन में जोड दिया। देखते ही देखते हो-हुल्लड मचाती भीड के बीच पर्दा खडा हो गया, और सिनेमा शुरू हो गया— 'परिवार।' घरवालिया रोटी-पानी निवटा कर अपने-अपने पानदान और पखे लेकर बाहर चबूतरों पर जा बैठी। लडके-लडकी भीड मे बैठ गये। जमीला भी सलमा के साथ भीड के पीछे-पीछे खडी हो गयी। अब कहने को वह सिनेमा देख रही थी लेकिन उसकी खुद की जिन्दगी एक सिनेमा हुई जा रही थी। कभी हीरो की जगह हाजी का बेटा नजर आता, कभी हीरोइन की जगह खुद को तसव्वुर करती। उसे महसूस हुआ कि हाजी के बेटे की शक्ल जीतेन्द्र से कितनी मिलती है। हालाकि यह बात एकदम नही थी पर इश्क की आखें जो नही होती उसे भी दौड कर देख लेती हैं। हाय ! उसने सोचा ऐसा हो एक बगीचा हो, बगीचे मे उन दोनो के सिवाय कोई न हो, हाजी का लडका गाना गाता हुआ उसे पकड़ने की कोशिश कर रहा हो···वह इठलाती-भागती फिरे···ऐसी ही शानदार सलवार-कमीज पहने·· फिर एक झाडी की ओट मे जान-बूझकर पकड मे भी आ जाये···फिर लोग देखें कि झाडी हिलती हुई नजर आ रही है। जमीला को हँसी आ गयी। हालाकि परदे पर बडा करुण दृश्य चल रहा था। लोग देखें ? लोग कहा से देखें ? लोग कहां से आ गये ? अच्छा···क्या होना है ? क्यो हिलती है झाडी इतनी जोर से ?

तभी किसी ने जमीला का हाथ पकड़ा, जमीला ने सोचा भीड और अधेरे मे किसी का हाथ यू ही उसके हाथ पर पड गया होगा। हटाना चाहा। पकड सख्त हो गयी। पीछे मुडकर देखा तो हाय ! उसकी तो जान ही निकल गयी ! वही था। मलमल का कुरता, चारखाने की लुगी, गले मे रूमाल...इतने सारे जनो के बीच उसका हाथ पकड कर...बेशरम...बेसबर···छोडता भी नही...कोई देख न ले इसलिये उसके साथ खिचती चली गयी। एक तरफ ले जाकर कुछ बोला...पता नहीं क्या बोला···जमीला

का ध्यान तो इस पर अटका था कि उसके मुह से शराब की तेज बदबू आ रही थी। लुगी की टेंट मे से कुछ निकाल कर दिखाने लगा। जमीला भागी। पकडकर कोई कागज छातियो के बीच ठूस दिया। जमीला का दिल इतनी जोर-जोर से बजने लगा कि जैसे सीने मे घुग्घट चल रहा हो। भागी-भागी घर आयी और कमरे मे घुस गयी। सास ली। क्या चीज हो सकती है ? चिट्ठी होगी ? मेरी जान'''दिल की रानी'''गुलाब की छडी ?'''नशे की बोतल'''नदीदा ! !

कुछ नही होता, अगर जमीला की मा उसी वक्त कमरे मे नही आ जाती और उन्हे देखकर जमीला के हाथ मे वह कागज छूटकर नही गिर जाता, जमीला की मा उसे उठाकर ध्यान से नही देखती और उसे फाडकर फेंकने के चक्कर मे एक निरोध उनके हाथ मे नही आ जाता।

उस रोज जमीला को इतनी मार पडी कि उसका बदन जगह-जगह से सूज गया, हड्डिया तक नरम पड गयी। पर मार की तकलीफ कुछ नही थी उन गालियो के सामने जो उसकी मा छाती कूट-कूट कर रोते हुए, हाजी और उसके लडके को दे रही थी। सच्चे दिल से निकली पवित्र गालिया ! गरीब की हाय ! एक मुफलिस मा की बद्दुआ !

जमीला को लगा, उसे मर जाना चाहिए। अब जीने का कोई मतलब नही है। हाजी के लडके ने उसके सारे सपने एक झटके मे बडी बेरहमी से तोड डाले। उसे आसमान से उडाकर गन्दे नाले मे फेंक दिया। इतना जलील। मर्द की जात इतनी जलील ! ! उसे अपने आप पर शर्म आने लगी। सारा बदन जलने लगा।

उस रात सिनेमा के बाद नब्बू के होटल के सामने लाठिया चली। जमीला के भाई ने अपने तीन-चार दोस्तो के साथ हाजी के लडके को मार-मारकर लहूलुहान कर दिया। फिर सब भाग गये। कोई घर नही लौटा। मोहल्ले मे सारी रात हगामा चला। हजार मुह हजार बात। जाने कौन उसे उठाकर घर पहुचा गया। सब एक तरह से खुश थे कि मोहल्ले की बेटियो पर गन्दी नजर डालने वाले को अच्छा सबक मिला। पर जुमेदीन का दिल पता नही कैसे बालिश्त भर नीचे धसक गया था। उन पर दहशत तारी थी। जमीला की बदनामी का डर, हाजी की दुश्मनी का डर, पाकिस्तान वाले रिश्ते के टूट जाने का डर। बेटे की जान का डर। पुलिस-कानून-सजा का डर। डर ! डर ! डर ! डर ! !

रात भर बीडिया फूकते रहे, अल्ला-अल्ला करते रहे और सुबह डरते-डरते हाजी के घर पहुच गये। सफाई देने, माफी मागने, सुलह करने। हाजी ने ऐसे दिखाया जैसे कुछ हुआ ही नही हो। हमेशा की तरह खातिर-तवज्जो या गपशप तो नही की, पर आखें भी नही तरेरी। दरअसल वह कुछ बोले ही नही। हा हू करते रहे और बेकाम मसरूफ होते रहे। बडी दुविधा मे जुमेदीन लौटे। खुद को तसल्लिया देने की कोशिश करते रहे कि जो हो, हाजी बुजुर्ग आदमी है, अल्ला वाले है, मोहल्लेदारी का लिहाज नही छोडेंगे। जो हो गया, हो गया, बच्चे के झगडे को बडो की रजिश बनाने मे क्या फायदा।

जमीला फिर भी हाजी के बेटे को माफ कर देती, उसके सारे गुनाह एक मां की तरह अपने सर ले लेती, अपने आसुओं से जख्म धोने की तमन्ना कर लेती, लेकिन उसी शाम पुलिस जुमेंदीन और उनके बेटे को पकडकर सबके सामने पीटते हुए और घसीटते हुए ले गयी। तीन रोज थाने में बन्द रहे। जो गुनाह नही किये थे वो भी कबूलवा लिये गये। जमानत हुई नही। फिर एक-एक महीने की सजा हो गयी। पीछे से जमीला और उसकी मां ने बहुत बुरे दिन निकाले। मोहल्ले वाले खुले आम दिन भर हाजी को कोसते, पर उन्हें या उनके किसी आदमी को देख लेते तो एकदम खामोश हो जाते। हर प्रकार के स्वस्थ मनोरंजन से वंचित वे लोग जमीला और उसके यार की चटपटी कहानियां गढ-गढकर एक-दूसरे को सुना रहे थे और खैर मना रहे थे कि ऐसा उनके साथ नही हुआ। कुवारियों की खामखा शामत थी, लेकिन बातों का मजा लेने में पीछे वे भी नही थी। लुगाइयों को जमीला की मां से सच्ची हमदर्दी थी, पर हालात ऐसे थे कि हमदर्दी या तंज के अलावा वे गरीब उन्हें कुछ दे भी नही सकते थे। न कोई उनके आदमी को छुडवाकर ला सकता था, न कोई पाकिस्तान वाले से जमीला का निकाह पढवा सकता था, न जुमेंदीन की जगह कमठे पर जा सकता था। और जमीला जो खुद को सारे झगडे की जड समझकर तरह-तरह से सजाए दे रही थी, चुपके-चुपके, इतने चुपके कि कभी-कभी उसे खुद भी पता नही चल पाता था, 'उनके' अच्छे हो जाने की कामना करने लगी थी और 'उन्हें' माफ करती जा रही थी। अपने और हाजी के बेटे के बारे मे फैल रहे किस्सो को सुनकर तो उसे लगता कि इससे तो वह ये सारे किस्से सच ही कर देती तो क्या हर्ज था ?

× × ×

छूटने के बाद जुमेंदीन ने जवानी की छोडी शराब फिर शुरू कर दी। उनका बेटा आदमी बन गया था और बाप के साथ कमठे पर जाने लगा। जुमेंदीन इसी मोहल्ले में रहते हैं, इसका पता भी तभी चलता जब वे शराब पीकर मोहल्ले में आते। धमाल करते, चीखते-चिल्लाते, रोते, नालियो मे गिरते और कहीं भी औंधे हो जाते, जहा से जमीला की मां और उसका भाई उन्हें किसी तरह उठाकर घर लाते। हाजी ने अपने बेटे को बम्बई भेज दिया था और फिर पहले की तरह मोहल्ले की दुनियां से बेखबर अपने कारोबार में लग गये थे।

मैं अक्सर रात को अपने मकान के पीछे जुमेंदीन को नशे मे चीखता-चिल्लाता सुना करता और बेचैन होता रहता। कभी वह मुझे खिडकी या छत से अपनी जानिब देखते हुए देख लेते तो वहीं से चिल्लाकर कहते—बाबूजी ! मुसलमान मुसलमान का खून पीता है तो मुसलमान कैसे हुआ ? बोलो ! बाबूजी पैसे वाले सब काफिर हैं। काफिर। का-फिर। इनके मुंह पर थू। थू। या अल्ला ऽऽ। फिर ऊपर आसमान की तरफ मुह उठाकर छाती कूटते हुए और बाल नोचते हुए वह चीखते—इस पैसे वाले के बदन मे कीड़े डाल। इसकी मिट्टी गारत कर। इस काफिर पर बिजली गिरा ! जैसे अल्ला को हुक्म दे रहे हों।

फिर एक दिन मेरे पास एक पोस्टकार्ड पढ़वाने आये। पोस्टकार्ड हमीद मिया का था। लिखा था। पैसे इकट्ठे कर रहा हू। ढाई सौ रुपये हो गये है। पूरे होते ही जहाज से कुवैत जाऊगा। आप जमीला को लेकर बम्बई आ जाए। एक फ्लाइट के लिए बम्बई आ जाऊगा। वही निकाह हो जायगा और वहा से हम दोनो कुवैत होते हुए पाकिस्तान आ जायेंगे।

ऐसे ही खत हमेशा आते। सिर्फ हमीद मिया की जमा रकम तिल भर आगे सरक जाती है।

जुमेदीन किसी से कुछ नही कहते। किसी को कुछ नही लिखवाते। रोजे-नवाज सब छूट गये है। आखो मे अकेले मे सबकी ऐसी-तैसी कर देने वाली मस्ती आ गयी है। चुपचाप काम पर जाते है और जब नही जाते तो मेरे पास आ बैठते हैं। मुझे कराची के, लाहौर के, अपनी जवानी के किस्से सुनाया करते हैं। जब पार्टीशन नहीं हुआ था और उनके बाप नाजुद्दीन खान की खूब बडी कपडे की दूकान थी। जब वह घिसे-पिटे जुमेदीन नही जुम्मादीन खान थे। उनका ख्याल है पाकिस्तान मे चीजे बहुत सस्ती है और आदमी बहुत सुखी। मैं कई बार उनसे कहते-कहते रह जाता हू कि जहा मुट्ठी भर लोग देश की दौलत पर कब्जा किये बैठे है, वहा बाकी सारे लोग सुखी हो ही कैसे सकते है? पर नही कहता। आदमी को जीना मयस्सर न हो तो कोई हीला, कोई बहाना तो हो ही—चाहे अल्ला हो चाहे पाकिस्तान! वह मैं उनसे कैसे छीनू? उन्हे सचमुच उम्मीद है एक न एक दिन हमीद मिया आयेंगे।

एक बात और बता दू? किसी से कहियेगा नहीं। अक्सर जुमेदीन के जाने के बाद मेरे यहा जमीला भी आती है। दो सवाल पूछती है—अब्बू के कने किसका खत था? दूसरा—बम्बई से कोई कागद नही आया?

उसने अपने बम्बई वाले को मेरा पता दे रखा है।

०००

एक गधे की जनम कुण्डली

० आलम शाह खान

०००

गणेसा ने काम माडने से पहले धरती को नमन कर माटी को माथे से लगाया, फिर 'जै बजरंग बली' के ऊंचे बोल के साथ हवा में तान कर उसने जो गेंती मारी, तो टन् से लोहा पत्थर पर जा बोला, नन्ही चिनगारियां चमक उठीं और गणेसा का उछाह बुझ गया, गेंती पर उसकी पकड़ ढीली हो गयी।

उसे अपने हाथ-हिम्मत पर खुद ही अचरज होने लगा। बित्ते भर उसका बूता और पर्वत तोड़ने-ठेलने का ठेका! बड़े कारखाने के लिए कांटेदार तारों से घिरी लंबी-चौड़ी धरती के पसार में उभरे दो जिनावरों बिरोबर ऊंचे टीमे को तोड़ने, बखेर कर उसके मलबे-माटी को वहां से नापेद करने की हौस, वह भी चुहिया-सी चदो और चार कम दस जिनावरों के बूते!

पहले तो इलाके में नये-नये आये पंजाबी ठेकेदार की समझ में गणेसा ओड की यह जुगत नहीं जमी, पर जब उसने 'ओड और पहाड़ तोड़' की दुहाई देते हुए अपने को माटी-मार मानुस बताया, साथ ही दूसरे मजूरों ने भी इस बात की हामी भरी, तो ठेकेदार ने बुलडोजर का काम बित्ता भर गणेसा और उसके छह गधों पर डाल तसल्ली कर ली। गणेसा ने ओछी बोली पर ठेका उठाया था। उतने पर तो बुलडोजर का किराया ही नहीं पुरता। फिर टीमे की तरफ नींव खुदवाने में अभी महीने दो-एक की देरी भी तो थी।

आंचल में आस लिये मक्का के रूखे टिक्कड़ गणेसा के आगे सरकाती तब चदो ही तो चिहुंकी थी, 'भला गधों के पीछे चलते-डोलते कहां तो पहुंचोगे! गारा-माटी तोड़ो-खोदो और फिर सिर पर टोकरी तोल जहां-तहां धरती के गड्ढे भरने से तो पेट का गड्ढा नहीं भरता...कुछ और जुगत बिचारो ना?

'ए...कौन जुगत जुटाऊं? जे बाप-दादों का किया दिया रूजगार है...नया धंधा कैसे जोड़ें-जुटायें?'

'अरे! नाई-धोबी, कहार-कलाल बदल गये, अपने ही धंधे को चमका दिया... दूजे धंधे धारने को नी बोलती...ओड के ओड माटी-तोड़ बने रहो, पण, इसमें ही बढ़न की सोचो! अब तो बप्पा के तीन जिनावर और आ बंधे हैं अपने खूंटे पे!' चदो ने मक्की के आटे को सानते हुए बात को गमक दी।

'तेरे बाप की जिनावरों की छोड...चल तेरी मानुस-खोर नवी मा आ मरेगी और रो-धोय कर खिलाये-पिलाये जिनावरो को खोज ले आवेगी !'

'मेरे बाप-पीहर की चलने भर दे ! तुम कड़ुवा बोलोगे ही...मैं जानू...जब की नय देखेंगे ! आज तो हमारे धन चार कम दस जिनावर है...भला कब तक दिन-दानगी पर माटी ढो-ढो कर ठेकेदारो का भरना भरते रहोगे ! अब तो हम तीन से चार भी तो हो जायेंगे !' इतना कहकर चदो ने गुजलाये आचल को ठीक कर अपने आपे को उसमे ढाप लिया ।

'वो तो है ही...पर दिन-दानगी न करू, तो मजूरी छोड ठेकेदार बन जाऊ...बोल ?'

'अरे तो ठेकेदार के सिर पे सीग होवे ? वो अपने काम मे हुसियार, हम अपने काम मे बने । तुम आज उस ठेकेदार से पूछ तो देखो के उस टीमे को तोड माटी फेकने का ठेका हमे दे दे । हा करे, तो हम दोना माथा जोड हिसाब बिठा लेगे के रोजाना की दिन-दानगी से कित्ता मिलेगा और ठेके मे जित्ते दिन खर्च के कित्ता पायेगे . जिसमे दो पैसे बत्ती मिलेगे, कोई ठीक ।'

और यू चदो के चलाये चल कर गणेसा ने टीमा तोड माटी फेंकने का तीन सौ रुपये का ठेका उठा लिया था । पर गैंती की पहली मार पथराई माटी की मोटी परत को भुरभुरा कर रह गयी, तो गणेसा का माथा ठनका । दूसरी मार ठीक से न सधने पर उसने हिया-जोड साम तोल कर तीसरा भरपूर आघात किया । फिर भी दो मुट्ठी गारा धसक कर रह गया और टन् की टकार के साथ जो चिनगारी फूटी, तो गणेसा की आख की चमक बुझ गयी । उसने गधे से सटी, हाथ मे फावडा लिये पास खडी चदो को खाऊ निजर मे देखा और फिर घनाघन गैंती तोल धरती तोडने मे जुट गया । ठीक ही कडियल जमीन थी । एक लम्बे दम की दुहरी सास खरच के भी गणेसा माथे पे पसीना तो ले आया, पर दो टोकरी मिट्टी नही उकेर सका । पसीने के तोल मे मिट्टी को कम देख चदो पल भर को भीतर से हिल तो गयी, पर तभी सभल उसने फावडे को तिरछा कर धरती पर बजा दिया ।

गणेसा के पसीने के साथ झरते बिन बानी के बोल—'अब क्या होगा ?'—को आखो-आखो मे समझ कर वह कह गयी, 'सारी टेकरी इत्ती कडियल नी···इत-उत बित्ता-चालिस हसली-फसली है···तुम सुस्ताओ, लाओ···मुझे दो गैंती, मैं जुटती हू ।'

'अरे, परे हो ! चार चोट पे सुस्ताने लगे तो हो गयी ठेकेदारी ! गणेसा ने कहा और उसके हाथ को झटक दिया ।

अब फिर हैऽ···हाऽ···हैंऽ···हाऽ···की उथली लय के साथ सर पर उठती और पैरो पे गिरती गैंती की धड्···धम्म की घमसान चल पडी । उधर चदो उभरी-बिखरी मिट्टी भर-भर टोकरी गधो की पीठ पर लगे गुनो मे भर रही थी ।

घटे भर की लाग के बाद यही चार कम दस गधे लाद कर चदो ने उन्हे घेरने की हाक लगायी, तो गणेसा ने उसे हाथ रोक आख भर देखा—गधे की सदे दे और

चदो भी। पिंडली तक ऊंचे घघरे में घुमे आंचल में ढपा उसका पेट सफा उभरा दीखा, तो उसे ऐसा लगा जैसे चार कम दस नहीं, तीन कम दस जिनावर लदे जा रहे हैं।

दो सट्टे मार बुझी बीड़ी को सर पर लिपटे हाथ भर के गमछे में खोंस गणेसा फिर माटी तोड़ने में जुट गया। उसने दो 'चवे भी नहीं तोड़े थे कि चंदो ने खाली गधों के साथ गणेसा को आ घेरा और हुलसती हुई बोली, लो, हौसले वालों का हाली वो ऊपर वाला है···वो जो पानी की टंकी के पीछे बड़ा खड्ड है, वहीं गेर आयी माटी···लगे है जैसे आधा टीबा उसमें ही पुर जायेगा।

उधर जब गणेसा के ठेकेदार बनने की बात चंदो की नवी मां के कानों में पड़ी, तो वह जल-भुनकर रह गयी—अरे-अरे, लूले डूगर लाघने लगे···कल दो पैसे जो हाथ में आ गये, तो वो हमें कब गिनेंगे! और वह तुरत गणेसा के बाड़े-बसखट के पास जा खड़ी हुई।

'चंदो हो! अपने जिनावर लेजा रहे···तेरा बप्पा रात-रात भर खासे-खपे··· जिनावर किराये पर चढ़ा उसकी दवा-दारू जुटाता है।' इतना कह वह बाड़े में धसी और जिनावरों को खूंटे से खोलने लगी।

'माई! थम···सुन तो···ठेका उठाया है···इन जिनावरों के बूते इनका किराया जो और लोग दें, हम भर देंगे···'

पर माई ने एक न सुनी। उसके दूर होते बोल आये, 'भाई-जमाई से जिनावरों का किराया लेते हममे नही बनेगा!' और उसने हांक लगा दी। अब गणेसा के बाड़े में तीन जिनावर रह गये।

ठेकेदार ने जब गणेसा को तीन गधों के साथ काम पर लगे देखा, तो वह बिदका, 'पहले ही काम की चाल सुस्त है...तीन गधे कहा छोड़े? यू काम चला, तो तीन महीने में पूरा नहीं होने का...! अठवाड़ा टूट गया और तूने अस्सी पग जमीन नहीं तोड़ी! पखवाड़े बाद तो यहा नीम खुदनी है...कारीगर जुड़ते हैं।'

'ठेकेदार जी, क्या करें, हमारी सास के जिनावर थे...वो आज खूंटे से खोल ले गयी...! तुम फिकर न करो, कल से मैं किसना को भी काम पे लगाता हूं...आखिर तो आठ बरस लाघ गया।'

'तीन गधों का बदल किसुना? भला वो नन्ही सी जान क्या काम सुलटा पायेगा?'

'मालिक, दीखने मे छोटा दीखे है, पर हम लोगों के हाथों में जान है। फिर यू कब तक गधों के पीछे चलता रहेगा...उसे भी तो काम सीखना है!'

'तुम जानो, अगले दस दिन में काम नाप लेंगे। कुल तीस दिन हैं तेरे पल्ले। ठीके मे टेम की चूक नहीं निभती...यही तो बात है...उसी के तो पैसे हैं...और हां, वो अर्नेस्ट मनी तूने जमा करायी? मुनीजी बोलते थे। काम बाद को जुड़ता है, पहले पैसे जमा होते हैं, कायदा है।'

'पेसगी वास्ते बोल रये, सेठ...अरे हा, वो तो देनी ही है। कल ही तो ठेका

'ना-नाऽ···ठेकेदार देख गया है, सफा बोल गया है'··कल देखेगा, तो तेरे साथ हमारे भी छुट्टी !' इतना कह मुंशीजी ने पहले दो रुपये का नोट अपने सूती कोट के भीतर जेब मे धरा, फिर तिपाई पर रखे नोट दराज मे फेंकते हुए बोले, 'तीस रुपये की रसीद दोपहर को ले जाये, गणेसा से बोल देना।'

चदो मुह तकती रह गयी। कुढ कर बोली, 'जे फेरा तो इधर ही खाली करूं हू···अगली बेर से उधर को जायेंगे।' दो रुपये के बूते चदो ने मुंसीजी को इतना पतला तो कर ही दिया।

रोते गधे जब काम की ठोर आ खडे हुए, तो हुलास भरे हिये से गणेसा ने पूछा, 'तो मना लिया उसे···? अब तो इधर दूर नहीं जाना ?'

'नही, ठेकेदार का हुक्म है···क्या हुआ, पाच-पद्रा पग आगे सही···उधर ही गेर देंगे मिट्टी···! ऊखल मे सिर दिया, तो धमाके से क्या डर ?' चदो ने आखे मसलते हुए दरसाया कि वह असुआ नही रही, कुछ गिर गया है आख मे। उसने पहले तो फावडा पकडा, फिर उसे धकेलकर गेती थाम ली, 'दो छोटे ठडा पानी आख-मुह पर मार रोटी खा लो···अब मैं जुटती हू' इतना कह उसने हवा मे गेती तोल कर जमीन पर मारी, तो मारती ही चली गयी। थोडी ही देर में उसकी सास फूल गयी। उसके घड़े से निकल आये पेट पर मिट्टी की परत जम गयी।

उसकी हिम्मत पर गणेसा को तरस आ गया। पर गुस्सा कर बोला, "रोटी भी खाने देगी···खबर है, दो जी से है·· घेती के धमाके से कुछ इधर-उधर हो गया, तो·· '

तो, कौन ससार सूना हो जावेगा···ठेकेदार का काम रुक जावेगा···एक माटी मार मिनख···एक गधा नही, तो चार मोटर-मसीनें आ खडी होगी और !' तभी उसकी निगाह मे दो रुपये का नोट कौंध गया।

'सावत कलजुग है सावत ! धोले कपडो मे बटमार घूमे हैं चौ तरफ !' उसने गहरी सास छोड़ते हुए कहा।

'बात को उलझायेगी···सीधे बोल, क्या हुआ ?'

'होना किसका···वो तीस रुपये मुंसीजी को दे आयी पेसगी के···रसीद दे देंगे।' गणेसा ने उसे आखो मे जो तोला, तो वह पहले ही बोल दी, 'अरे, आडे वखत के लिए, जचगी-मादगी के लिए जोड रखे थे, सो भर दिए···चौथाई-आधा काम निपटने पे हमे भी तो देसगी ठेकेदार से मिलेगा···जो भी कायदा है।'

'तू कायदा-कानून खूब जाने ! फिर तू ही जाना रात-बिरात को और लाना; जब हमारी कोख खुले···हम टाल-मटोल लगा रहे। जे धन्ना साहूकार की जनी पहुंची और दे आयी जमा-जत्था ? और मरखने मुंसी को कुछ नी दिया ?

'तुम्हारी गुद्दी मे अकल भोत है। पर मैंने सोचा रकम पाकर नरम पड़ जायगा और उधर ही मिट्टी गेरने का लग्गा बना रहेगा···पर मुंसी दो रुपये भी डकार गया।'

गले की सूखी घाटी को छाछ-पानी से गीला कर जब तक गणेसा टुक्कड़ निगलता रहा, चदी ने इतनी माटी खोद ली कि तीन गधे लद जायें। [illegible] गधों के

गुनते ठूम-ठूम कर भर दिये, फिर भरपूर टोकरी अपने सर पर रखी और दूसरी टूटी टोकरी में दो फावड़े मिट्टी किसना के सर पर धर दी।

गणेसा ने पानी पीकर डकार ली, तो उसका हिया बढ़ाने को चंदो ने पूछा, 'लो, हो गये पाच कम दस जिनावर ''एक ही तो घटा ''उसकी कमी गुनती में ऊपर तक ठूंसी मिट्टी से पूरी हो गयी। अरे, हिम्मत बिन किम्मत नहीं !' उसने लड़खड़ाते किसना को सहारा दिया और होंठों में मुसकान की फांक भर आगे बढ़ गयी।

सचमुच और दिनों की तोल में आज काम की चाल तेज रही। एक तो जमीन उतनी कड़ियल नहीं आयी, और ऊपर से चंदा ने बिजली की-सी फुरती दिखायी,

किसना भी मां के साथ दिन भर जुटा रहा। उधर दूसरे कामों पर लगे मजूर-मजूरनिया पांच बजते ही फारगत ले घर-टोला को चल पड़े थे, तब भी तीनों काम पर जुटे थे। जब सूरज ऊब-डूब होने लगा, तभी उन्होंने अपने लत्ते झाड़े और काम समेटा। छप्पर-ओटले पहुंचते-पहुंचते अंधेरा हो गया। किसना तो जाते ही कटे पेड़ की तरह धरती पर पड़ गया और गणेसा ने जो छप्पर के बांस का टेका लिया, तो पसर ही गया। चंदो जिनावरों का सानी-पानी करके लौटी, तब तक दोनों बाप-बेटे की बजती हुई नाक जवाब-सवाल में डूबी थी।

थक तो चंदो भी गयी थी, पर उसने झटपट आटा साना, चूल्हे में उपले चुने और अधमरी चिनगारियां टटोल फूंक मार कर छप्पर में धुआं-ही-धुआं भर दिया। चंदो चूल्हे में फूंक मारने के लिए झुकती कि उसका उभरा पेट दबने-दुखने लगता। एक पल उसने सोचा, कितना अच्छा होता, पेट का बोझ धरती के किसी गड्ढे में रख देते और साल-छह महीने में उसे दुलार कर ले आते! यह बचकानी बात उनके माथे में आयी कि उसकी आंख हारे-थके गणेसा पर टिक गयी—इस भोले मजूर को मैंने ठेके की सूली पर चढ़ा दिया'' पिट गये तो'' खा ही जायगा मुझे! चंदो के आपे में झुरझुरी-सी दौड़ गयी—और किसना भी तो थक के अधमरा हो गया है'''पर यूं थकने-हारने से तो काम चलने का नहीं'''अब पेसगी रुपया भी भर दिया है'''दिन में बुला कर मुंसीजी ने इनसे कागज पर अंगूठा भी लगवा लिया'''अब छूट नहीं'' काम तो पार उतारना ही ही है'''किसना दो दिन हलका न होगा, तीजे दिन रवत पड़ जायेगी'''फिर अभी से पसीना पीना नहीं सीखेगा, तो कौन मां बैठी है जो दूध की नदियां उंडेल जायेगी उसके मुंह में! सोचते-सोचते चंदो जाने कहां चली गयी और उसे भान ही नहीं रहा कि जली हुई आग फिर धुआं देने लगी। उसने मुक्का मुला कर बांस की फुंकनी में जोर की फूंक मारी, तो आंच चूल्हे में दिपदिपाने लगी। तभी उसने हथेलियों की ओट आटे के पेड़े बनाये और साध कर, उन्हें चूल्हे चढ़ी ठिकरी पर थाप दिया। दो टिक्कड़ सेक कर उन्हें चूल्हे से लगा खड़ा कर दिया। गज भर दूर छितरे प्याज की गांठ को चिमटे से गांव पास कर लिया और आंखों में ममता के डोरे उजाल कर पुकारा, किसुना'''हो किसुना'''उठो किसनलाल'''! लो, खा लो!' किसना कुनमुनाया और गणेसा ने करवट बदल

कर आंख खोली।

अगले तीन दिनों में इतना काम हुआ कि देखकर ठेकेदार दंग रह गया। उधर गणेसा को भी आस बंधी कि कि 'भोले शम्भू' ने चाहा तो सभी चुटकियों में सुलट जायेगा'''आधा दूह ढाने को है और बाकी आधा थम गया समझो ! पर दूह के टूटने के साथ वे तीनों माटी खोद मानुस ही नहीं, जिनावर भी टूटने लगे। चंदा जिस फुरती से जिनावरों को लादने और खाली करने में जुटी, उसी हुलास और हिम्मत से गणेसा माटी तोड़ने में लगा रहा। मां-बाप को ये जानमारी करते देख किसना भला कब पीछे रहने वाला था। पर अब उसका मुंह अन्नी-सा निकल आया। बदन की हड्डियां दीखने लगीं। गणेसा भी मुत कर धूप में झुलसा गया। चंदा के पैर भारी थे ही, अब उसकी हालत और भी पतली हो गयी। उसका जी मिचलाता, पेट मुंह को आने लगता और वह गणेसा से सब छिपा कर दूर कुछ उगल देती। इधर ड्योढ़ा बोझ ढोते-ढोते जिनावर भी सूख गये। उनकी चाल सुस्ता गयी। आंखों में कीच भर गयी। उनमें छोटे कानों वाली गधी 'मोड़ी' तो बड़ी बेजोर निकली, चार पग चलती और घुटने टेक देती। चंदा उसे उठाती, खड़ा करती, खुद थक जाती। अब कभी 'मोडी' गुनता गिरा देती, तो कभी लदान में दूर जा अड़ जाती। कम लादने पर भी आज वह जो पसरी, तो फिर कब उठी ! चंदा ने उसे खड़ा करने की जी तोड़कर जान लगायी, तो उसने वह दुलत्ती झाड़ी कि उसकी कोख में जा लगी। चंदा को नीले-पीले दीखने लगे। फिर उसकी आंख बंद हो गयी। चंदा की हालत देख कर गणेसा को जो कोप चढ़ा, तो उसने दूर से ही गेंती को तोल मोड़ी की तरफ फेंका, 'तो-भोड़'''तो-भोड़ की दर्दीली भौंक हवा में घुली और मोडी धरती पर फैल गयी।

फावड़ा-टोकरी पैरों से छितरा कर गणेसा ने लपक कर चंदा को सभाला और जैसे-तैसे गधे पर चढ़ा छप्पर में ला डाला। उसे लेटने बिठाने जैसा करके हल्दी-तेल की लेप-मालिश की। चंदा को राहत मिली, तो आंख खोलते ही बोली, 'काम बढ़ा दिया''' मोडी गाभिन थी बिचारी !'

तभी किसना एक जिनावर के साथ ओटले के घेरे में घुसा और बोला, 'बापू, मोडी तब में पड़ी है वहीं'''उसके मुंह से झाग निकल रहे !'

गणेसा ने सुना और सर पकड़ लिया।

रात को चंदा का शरीर फिर माठा हो गया। उसका घाघरा भीग गया। जगत बुआ ने भांत जुगत की, पर कुछ न बना। वह डाक्टर-वेद पर आकर टिक गयी। बोली, 'थोड़ा पैसा जुटाओ और किसी समझदार को बुलाओ, पूरे दिन पे चोट लगी है !'

छप्पर-ओटले में क्या धरा था ? इधर तो चंदा मांग-तूंग कर दिन टालती आ रही थी। वैसे काम इतना निबट गया था कि कुल में से चौथाई रकम के वे हकदार हो गये थे। इसी के सहारे चंदा ने उधार की थी।

जैसे-तैसे रात कटी और टेम पर वह काम की ठौर जा पहुंचा, पर काम पर जुटा नहीं। मुंसी-ठेकेदार की बाट जोहने लगा। गणेसा तय करके आया था कि और

निर्बल को बल

० डॉ० नरपति सिंह सोढ़ा

०००

वह पत्नी के उस व्यवहार से नाखुश था। वस्तुस्थिति उसके सामने थी। लेकिन वस्तुस्थिति को किस ढंग से पकड़ा जाय यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसकी पत्नी ने जिस ढंग से पकड़ा था—लालच देने का ढंग, वह भी उसे कष्ट पहुंचा रहा था। इसी उधेड़ बुन में उसके घर से निकलते-निकलते दस बज चुके थे। उसे आज फिर देरी हो गयी थी।

वह न तो महतर था और न ही बहुत बड़ा धन्ना सेठ। और तो और वह कोई सीमित या असीमित अधिकार प्राप्त अधिकारी भी नहीं था। वह एक साधारण-सा क्लर्क था। यद्यपि उसका आफिस गया गुजरा आफिस नहीं था। वहां काम करने वाले दूसरे कर्मचारियों की आमदनी थी। आजकल तनख्वाह आमदनी नहीं होती है। उसके जीवन की विडम्बना यही थी कि उसकी आमदनी नहीं थी। तनख्वाह के नाम पर उसे लगभग छः सौ रुपये मिला करते थे।

उसके मां-बाप गांव में रहते थे। वह अपने दो बहिन-भाई तथा पत्नी व बच्चों के साथ इस अजगर से शहर में रहता था। उसने कभी कलकत्ता-बम्बई नहीं देखा था। इसलिए उसके लिए वह शहर ही बड़ा महंगा शहर था। आदत से वह विभिन्न विषयों की पुस्तकें तथा पत्रिकाएं पढ़ने को लाचार था। इन पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में वह अपने को खो देने में पहले सफल हो जाता था, इन दिनों लगभग चार माह से उसे सभी विषय लगभग विषयान्तर हुये लग रहे थे। पिछले कई माह से वह घर में हो रहे अधिक खर्च से परेशान था।

और भी परेशानियां थी। इसी कारण आज फिर उसे ऑफिस पहुंचने में देरी हो गयी थी। वह जब ऑफिस पहुंचा तो दस बज कर बीस मिनट हो रहे थे। हाजिरी रजिस्टर में उसके नाम के आगे लाल 'क्रास' लगा हुआ था। उसने ज्यों ही हस्ताक्षर करने चाहे कि आफिसर ने उससे छुट्टी का आवेदन-पत्र मांग लिया। रोजमर्रा की परेशानियां और ऊपर से बिना बात छुट्टी का आवेदन? उसे क्रोध आ गया।

'शाम को जो रोज-रोज छः छः, सात-सात बजाकर आप हमें छोड़ते हो, तो उस वक्त टाइम का हिसाब कौन देगा? नौकरी करता हूं तो सरकार की करता हूं। आपकी बीबी को जुखाम हो या आपको राज्यपाल से अपनी सेवाओं का पुरस्कार लेना

हो या स्थानीय अखबार आपके भ्रष्टाचार की पोलें खोल रहे हैं उस सबके लिए क्या मैं जवाबदेह हू ?'

पिछले कई महीनो से साहव के कच्चे-चिट्ठे नगर के अखबारो मे बरावर छप रहे थे। साहब ने गरीबी-रेखा से नीचे के लोगों के लिए चलाये जा रहे रोजगार प्रशिक्षण केन्द्रो के लिए खरीदी गई मशीनो की खरीद मे, प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले लोगों को दिये जाने वाले भत्ते तथा कच्चे माल मे जो गड़बड़ें की थी वह सब छप रहा था। और साहब दिन भर कभी जिलाधीश, कभी एम० एल० ए०, कभी मिनिस्टर तो कभी किसी राजनेता कभी किसी अफसर की हाजरी मे रहते। शाम को साढे चार, पौने पाच कार्यालय पधारते। तब सभी कर्मचारियो को रोककर झूठे-सच्चे आकड़ो के दस्तावेज तैयार करवाते थे।

साहब इन आकडो की मदद से राज्यपाल से पुरस्कृत होने की फिराक में भी थे। दूसरे कर्मचारी तो कुछ चुग्गी-चटका ले लेते थे लेकिन वह अपनी आदत के कारण इस बीमारी से दूर रहता था।

इधर पिछले कुछ दिनो से साहब की मेमसाहब बीमार थी। साहब इन दिनों ग्यारह बजे रोज दफ्तर से चले जाते और वही साढे चार, पौने पाच लौटते। उसके बाद अन्य लोगो के साथ उसके भी रोज साढे छ सात बज जाते। यही सारा गुस्सा उसने साहब के मुह पर थूका था।

उसने हाजिरी रजिस्टर मे क्रास के ऊपर हस्ताक्षर किये। बिना छुट्टी का आवेदन-पत्र दिये ही वह अपनी सीट पर आकर बैठ गया। वह सोचने लगा कि इस दफ्तर के रिकार्ड के मुताबिक जिले के हजारो हरिजनो, मेघवालो को रोजगार प्रशिक्षण का लाभ दे दिया गया है, मशीनें व ऋण दे दिये गये है। वह सबका सब कहा गया ? यह साला साव बनता है और मुझसे 'लीव' माग रहा है ?

वह वर्तमान से कट चुका था और ऐसी ही परिस्थितियो मे बीतें कल और आज की सुबह को भी याद करने लगा।

कल जब वह अपने चौक मे बैठा छिपते सूरज की रोशनी मे एक पुस्तक पढ़ने का प्रयास कर रहा था। वह सोच रहा था कि गर्मी के दिन कितने अच्छे होते हैं। सवेरा जल्दी और रात देर से। लाइट का खर्चा कितना बच जाता है। पखा उसके घर मे नही था। दफ्तर की फाइलो के कवर से दिन भर उस सहित उसके घरवाले अपने पर हवा करते रहते थे। उस समय भी एक फाइल कवर के टुकड़े मे वह अपने को हवा कर ही रहा था कि हवा का लहरका आया। उसने हवा झलना बद कर दिया। तभी हवा के दूसरे लहरके के साथ बदबू के तेज ने उसके नाक-मुह को झकझोर डाला। चौक के पास ही ताहरत था। बदबू वही से उठकर आ रही थी। वह समझ गया मेहतरानी आज फिर झाड़ के नहीं गयी है। वह झल्लाया कि कमबख्त जब देखो तब गोत मार जाती है। इस मेहतर को उसने लाख बार शराफत से समझाया है कि भले ही एक-डेढ़ रुपया ज्यादा ले ले लेकिन टाइरन तो कम से कम रोज झाड़ा कर। लेकिन मेहतर-मेहतर

था। अपने स्वभाव से इन्हीं तरह ही झाड़ता था।

उसे अपनी स्थिति पर बड़ी कोफ्त होने लगी। उसने पुस्तक को जैसे अनदेखा कर दिया और सीधा अकड़कर बैठ गया। उसको मेहतर पर रह-रहकर गुस्सा चढ़ रहा था। उसको यह भी जानकारी थी कि सामने वाले लालाजी के यहाँ यही मेहतर कभी नागा नहीं करता है। जबकि लाला जी सहित लालाजी का पूरा घर-बार इस मेहतर के साथ गाली-गलौच के बिना बात ही नहीं करता है। उन गालियों की मातो सुरो की गूंज उसके घर में रोज सुनाई देती है। वह भी सुनता है।

वह सोचने लगा कि गरीबी मुझ जैसे संवेदनशील को और गरीब बना देती है। जबकि अनपढ़ लालाजी को इनकी सम्पन्नता ने एक सशक्त सामाजिक व्यक्ति बना रखा है।

वह यह सब कुछ सोच ही रहा था कि हवा के एक लहरके के साथ तेज बदबू ने उसको झकझोरा। वह तब जल्दी-जल्दी किताब के पन्ने पलटने लगा। पढ़ने के बजाय उसकी गति विचारों के साथ चलने लगी। वह सोचने लगा कि देखो सरकार की ओर से बार-बार किये जा रहे प्रयासों के बावजूद ये हरिजन इस नरकड़े से पिंड नहीं छुड़ा पा रहे हैं। उसे महानुभूति हो जाएगी उसे अपने ही मेहतर का ख्याल आया जो सत्तर से ऊपर निकल चुका था। जिसके सात बेटे-बेटियों में से तीन जवान बेटे पिछले दो वर्ष में मर चुके हैं। उनकी छोटी-छोटी नन्ही-सी औलादों से यह बूढ़ा ताहरत झड़वाता है। इस बूढ़े मेहतर की कमर तो इतनी टेढ़ी हो चुकी है कि वह अपनी छबड़ी, जिसमें लोगों से रोटियां इकट्ठी करता है, उसको भी सम्हाल नहीं सकता। उसके मुह में जैसे बदबू से थूक भर आया। मुह के थूक को उठकर नाली पर थूकते हुए वह बड़बड़ाया—स्साला अपनी सुविधा के लिए आनेवाली पीढ़ी को दबोच रहा है। दूसरे ही क्षण उसे दुगद आश्चर्य हुआ कि इस पिसते हुए इन्सान के प्रति कैसे उसकी घृणा सोच के इस दौर में एकत्र हो गई। उसके दिमाग में चढ़ी बदबू अभी तक नहीं उतरी थी वरन् रह-रह कर हवा का लहरका उसको परेशान किये जा रहा था। अपनी इसी परेशानी में विचरते हुए उसके भीतर सकलित हुई घृणा ने उसे निर्णय लेने पर विवश किया कि कल सुबह वह इस मेहतर से बात करेगा, बात क्या करेगा वह इसको हटा ही देगा। उसको हटाने के निर्णय की समझ के साथ ही उसे लगा कि अब उसे रास्ता मिल गया है।

मेहतर को हटाने की बात उसने अपनी पत्नी से भी कह दी थी। उसकी पत्नी ने उसे पूरा तौलते हुए कहा था,

'क्या दूसरे मेहतर को यह साफ करने देगा? याद है लालाजी ने दूसरा मेहतर रख लिया था तो इसने तथा इसके बेटे-बेटियों ने मिलकर उसे कैसा झाड़ू-ही-झाड़ू से पीटा था।'

यह घटना वास्तव में वह भूल गया था। यह घटना याद आते ही वह आशंकित हो गया। क्योंकि उसके लिए पहले तो दूसरे मेहतर को दूसने दाम पर रखना मुश्किल था और अगर यह अपनी नाक रखने को ऐसा कर भी लेता है तो इन मेहतरों को उन

ड़ाई के भयावह दृश्य मे कैसे बचेगा ? उसकी कल्पना को वह दृश्य आन्तकित करने
लगा। उसने उस दिन खाना भी अरुचि मे खाया। किराये के मकान मे फ्लश हो तो
किराया ज्यादा। फ्लश न हो तो ये रोज-रोज के झंझट। उसका ज्ञान, उसका सहज
पुरुषत्व सब इस वस्तुस्थिति से आहत हो रहे थे। इसी विचार प्रवाह मे वह कब सोया
तथा कब सवेरा हुआ उसे पता नही चला। सवेरे जब उसकी नींद खुली तो उसे यही
चिन्ता कचोट रहा था। उसका मन उस पतीली के दूध के स्वाद जैसा था जो पतीली तेज
आंच पर रखी हो और जिसका दूध तेज आंच की तेजी से तले में जलकर चिपटता जाता
है और सारे दूध का स्वाद केवल जले हुए दूध में बदल जाता है। भारी मन से जब उसने
आंखें खोल चाय की इच्छा के साथ पत्नी को देखा तो वह मुंह कुप्पा किये बैठी थी।

'दूध वाला अभी तक दूध नहीं लाया इसलिए चाय नहीं बनी।' उसकी पत्नी ने
उसको अपनी ओर ताकते देख सम्भावित प्रश्न को भांपकर उत्तर दे दिया।

'क्या बजा है?' उसका छोटा-सा प्रश्न था।

पर इस बार उसकी पत्नी उखड़ गई।

'देखलो उठकर। 'मरे एक तो पानी-सा दूध लाते है और तिस पर दिन उतार
कर।' उसका गुस्सा जो टाइम न बताने पर पत्नी पर आना था वह भी दूध वाले के कारण
चाय न मिलने से और बढ़ गया। वह सोचने लगा क्यों न इस दूध वाले का भी हिसाब
आज ही कर दिया जाय। कमबख्त कभी सवेरे समय पर दूध नही लाता और बाजार
के खुदरा भाव से पैसा लेता है। पानी-सा दूध देता है वह अलग। तभी दूध वाला आ
गया। उसके हाथ मे एक परची थी। चौधरी की लिखी, दो महीने से दूध का जो हिसाब
नहीं किया उसको याद करवाने के लिए।

वह फिर आहत होकर कमजोर हो गया। दूध का हिसाब वह अभी भी करने की
स्थिति मे नही था। तंगी के इतने दांत होते हैं ? उसका सोच फिर छटपटाने लगा। ढलते
सवेरे के साथ वह निराश हो रहा था कि उसी समय उसे मेहतरानी दिखाई दी। उसकी
उत्तेजना सचरित हुई। वह पूर्ण आवेग के साथ दरवाजा खोलकर बाहर लपका ताकि
आज लालाजी की घरवाली की भाँति वह भी उससे दो-दो हाथ करले। उसकी पत्नी,
जिसने शायद सब कुछ भाप लिया था, उससे भी पहले मेहतर को आवाज लगाती हुई
बाहर निकली। पत्नी का नेतृत्व कवच उसे अच्छा लगा। उसने सोचा चलो औरत-औरत
को निपट लेगी। औरत से आदमी को माथा लगाना भी ठीक नही है।

परन्तु उसने देखा मेहतरानी उसकी पत्नी की आवाज सुनी-अनसुनी करके गली
मे चली जा रही थी। इस बार उसने अपने पत्नी की तेजी और मीठी आवाज सुनी।
उसकी पत्नी ने तेज आवाज मे कहा था—आज जाते समय साडी लेते जाना ! यह बात
मेहतरानी ने सुन ली थी। वह धीरे-धीरे जैसे भारी मन से वापस चलती दरवाजे के पास
आ गई। जब वह दरवाजे के पास आ गई तो उसकी पत्नी ने पुन. कहा, हां, साडी ले
जाना। और देख गर्मी बहुत है इसलिए रोज झाड़ा कर !

उसकी पत्नी की बात का महत्वपूर्ण हिस्सा उसके लिए साडी ले जाना ही था

इसलिए इतनी बात पूरी होते ही अनिच्छा से वह हां भरती हुई चली गई। उसकी पत्नी की शेष बात उसकी पीठ ने सुनी।

मेहतरानी उसके ऑफिस आने से पहले आज ताहरत झाड चुकी थी। वह सवेरे पत्नी द्वारा निकाले गये विकल्प से परेशान था। वह यह भी निष्कर्ष निकाल चुका था कि मेहतरो को इन हालातो के पीछे के कारणो मे वह भी शरीक है। दूसरी ओर मकान मालिक यदि ताहरत को 'फ्लश' का करवायेगा, अव्वल तो वह करवाएगा नही और करवाएगा तो उसका खर्चा उससे ही मागेगा, जो उसके पास नही है। तिस पर किराया और बढा देगा, यह भी उसके लिए भारी पडेगा। पिछले साल आयी बाढ के बाद भी मकान मालिक ने अभी तक मकान की मरम्मत नही करवायी है। जबकि जगह-जगह से दीवारो पर से चूने के लेवडे उतर रहे है। और दीमक सारे घर मे फैलती जा रही है। उसका मानस उसकी वास्तविक स्थितियों के कारण और तनावपूर्ण होता जा रहा था।

उसने उस दिन कोई काम नही किया। वह उस दिन ठीक पाच बजे ऑफिस से घर लौट आया। आकर चौक मे बोरी बिछाकर ज्यो ही बैठा कि उसकी पत्नी ने कहा—*'आज बरसो बाद समय पर घर आये हो! घर मे दीमक फैलती जा रही है। अपनी* किताबो को क्यो नही सम्हाल लेते ?'

उसे यह सुझाव अनमना-सा ही लगा। लेकिन दीमक के नाम से वह जैसे डर कर उठ गया। उसने जब किताबें उठाई तो देखा एक तरफ की सारी किताबो को दीमक चाट चुकी थी। जिसमे गीता, रामायण, राजनीति, शिक्षा, दर्शन तथा समाज शास्त्र आदि विषयो की चर्चित पुस्तकें थी। उसका कलेजा बैठ गया। सब मिट्टी हो गया। वह उनका ढेर जलाने के लिए करने लगा।

अत मे एक पुस्तिका उसके हाथ मे आई। जिसका केवल मुख पृष्ठ दीमको से बचा रह गया था। मुख पृष्ठ के साथ वाले पृष्ठो पर ढेरो दीमक अभी भी कुलबुला रही थी। उसने साहस करके मुख पृष्ठ पर छपा नाम पढा।···और उसे याद आया गत वर्ष पचायत सम्मेलन के समय लगी प्रदर्शनी मे समाज कल्याण विभाग का पाडाल देखते समय एक सज्जन ने उसे दी थी—'निर्बल को बल।' नाम पढते ही वह एक बारगी वह गभीर हुआ और तुरत पश्चात् वह जोर से हँसा। खूब जोर से हँसा। लगातार हँसने लगा।

०००

सूरज फिर निकलेगा

• कमर मेवाड़ी

०००

रात की घटना से वह बेहद परेशान है, बार-बार चाहने पर भी वह उस घटना को अपने मस्तिष्क से निकाल नहीं पा रहा है। वैसे अगर वह चाहे तो दोस्तों के साथ पिकनिक का प्रोग्राम बना सकता है। उस्मान के साथ बैठकर दारू पी सकता है और एक बुद्धिजीवी की तरह आदर्श बघार कर अमीर लोगों को गाली दे सकता है। और रात वाली घटना से अपने आपको मुक्त कर सकता है।

डाकिये की आवाज मे उसके विचार-तंतु टूट जाते हैं। वह उठकर डाक में आई सामग्री को टेबल पर रख देता है, और एक-एक चिट्ठी को ध्यान से देखता है। हिन्दी-अंग्रेजी के पांच साप्ताहिक अखबार, रचनाएं भिजवाने के लिये मुफ्तखोर सम्पादकों के तीन पोस्टकार्ड, एक अन्तर्देशीय पत्र उसकी एक पुरानी प्रेमिका का, वह पत्र खोलकर नहीं पढ़ता। उसे मालूम है इसमें लिजलिजी भावुकता से सने कुछ शब्द और फरमाइशों के अलावा कुछ नहीं होगा।

वह रूटीन मे चलते इस प्यार से अब ऊब गया है।

उसकी नजर अब घडी पर जा पहुंची है। दो बज रहे हैं। वह कमरे के ताला लगाकर बाहर आ जाता है। बाहर सड़क पर पहुंचते ही ठण्डी हवा का एक झोंका उसके पूरे शरीर को स्पर्श कर गुजर जाता है। उसे अहसास होता है कि इस बार अक्तूबर के आरम्भ में ही सर्दी ने अपना असर दिखाना शुरू कर दिया है। सब्जी मार्केट को पार कर वह चांदपोल से गुजरता हुआ पुरानी बस्ती की तरफ निकल पड़ता है। आगे नाला आ जाता है। नाले के दोनों ओर झोपड़ियां बनी हैं और गन्दगी का इतना ढेर है कि सांस लेने पर दम घुटने लगता है। वह जेब से रूमाल निकाल कर नाक पर लगा देता है। उसके कदम अब जल्दी-जल्दी उठने लगते हैं।

उसे समझ में नहीं आ रहा है। इस गन्दगी के ढेर में जहां सांस लेने में भी दम घुटता है, लोग किस तरह जिन्दगी बसर कर लेते हैं।

उसे सामने बस्ती के नव धन कुबेरों द्वारा बसायी नई आबादी की ऊंची-ऊंची इमारतें दिखाई दे रही हैं। वह आश्चर्यचकित है। कल जो लोग फटे हाल थे किस तरह से कारों और बिल्डिंगों के मालिक बन गये, और नाले के आसपास बसी झोंपड़ियों के लोग हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद भी गन्दगी और अन्धेरे के साम्राज्य तले दबे रहे।

इन्ही झोपडियो के बीच किसी एक झोपडी मे सुखिया रहती थी। सुखिया जो इस गन्दी बस्ती मे एक कमल का फूल थी। आज हवालात मे बन्द है। रात वाली घटना का केन्द्र बिन्दु सुखिया ही है। सुखिया जब नई-नई इस बस्ती मे आई थी तब पूरी बस्ती मे तरह-तरह की चर्चाओ और अफवाहो का बाजार गर्म हो गया था। कोई उसे आवारा व बदचलन समझता तो कोई अच्छे परिवार की महिला बताता, कोई उसे परित्यक्ता नारी बताता तो कोई भगोडी स्त्री कहता। गरज ये कि बस्ती मे जितने मुह थे उतनी ही बातें थी।

इन्ही चर्चाओ के आधार पर एक दिन मेरी सुखिया से मिलने की इच्छा हो गयी थी, बातो ही बातो मे बस्ती मे जन्म लेती इन अफवाहो का उसने बडे बेमन से जिक्र किया था, मुझे लगा इन चर्चाओ से उसके मन को ठेस लगी है। पर मुझे यह अहसास जरूर हुआ कि वह बडे हिम्मत वाली औरत है तथा किसी भी कठिनाई का बडी दिलेरी से मुकाबला कर सकती है। उसने बातो ही बातो मे मुझे बताया कि वह गुजरात के एक गाव की रहने वाली है। उसका आदमी दिनभर शहर मे लारी चलाता और शाम को घर लौट आता था। वे दोनो पति-पत्नी और छोटा-सा बच्चा बस यह था उनका छोटा-सा परिवार, वे बडे आराम से दिन गुजार रहे थे कि एक दिन उनकी इस छोटी-सी गृहस्थी मे तूफान आ गया। एक ट्रक दुर्घटना मे उसके पति की टाग टूट गयी। इस तरह यह छोटा-सा परिवार अनाथ और बेसहारा हो गया। पर सुखिया बडे जीवट वाली औरत थी उसने हिम्मत नही हारी। पति का स्थान उसने ले लिया। वह दिन-भर मेहनत-मजदूरी करती और अपने परिवार का भरणपोषण करती। इसी तरह दिन गुजर रहे थे कि प्रकृति का भयकर प्रकोप हो गया। एक दिन वह बच्चे को लेकर एक ऊची पहाडी पर लकडियां बीनने गयी थी। पीछे से अचानक नदी का बाध टूट गया। देखते-ही-देखते सारा गाव पानी की भेट चढ गया। इर्द-गिर्द का सारा वातावरण चीखो और चीत्कारो से गूज उठा। जो लोग बच सके वे पहाडियो पर चढ गये, शेष पानी के तेज बहाव के साथ बह गये। उसके अपाहिज पति ने भी जल समाधी लेली। इस तरह उसकी बची-खुची दुनिया भी लुट गयी।

जब बाढ़ का पानी कम हुआ तो सुखिया ने वह गाव छोड़ दिया और इस बस्ती मे चली आई।

सुखिया की दर्द भरी दास्तान जान लेने के बाद वह उससे हार्दिक स्नेह रखने लगा था। पर उसका स्नेह फलहीन था। बजर धरती पर बीज बिखेर देने जैसा। बस्ती मे वह सडक पर मिट्टी डालने से लेकर फसल काटने तक सभी काम करने लगी थी। अब वह पूरी तरह बस्ती की हो गई थी। शुरू-शुरू मे उसके आने के वक्त जो अफवाहो का बाजार गर्म हुआ था, वह भी अब ठण्डा पड गया था। बस्ती के दूसरे लोगो की तरह सुखिया भी इज्जत की जिन्दगी जी रही थी और खुश थी।

लेकिन कुदरत को कुछ और ही मन्जूर था। कभी अकाल की चपेट न आ सकी। बस्ती मे तरह-तरह की बीमारियां फैलने लगी। बूढे-बच्चों का हाल बुरा

कुछ देर सोते रहने के बाद उसे लगा कि कोई दरवाजा ठेल कर अन्दर आ गया है। उसने आखें खोल कर देखा तो दरवाजे के पास एक छाया खड़ी दिखाई दी। वह उठ कर खड़ी हो गयी। ढिबरी के उजाले में उसने देखा, सेठ दस-दस के कुछ नोट मुट्ठी में भींचे उसकी ओर बढ़ रहा है और उसकी आंखों में शैतान नाच रहा है।

'सेठ यहां क्यों आए हो ?' सुखिया ने बिना सहमे हुए पूछा।

'रुपये देने।' सेठ ने जवाब दिया।

दिन के उजाले में क्या सांप सूंघ गया था जो अब रात के अन्धेरे में आये हो ?'

'रात के अन्धेरे में इसलिये आया हूं कि बदले में तुमसे कुछ वसूल सकूं।'

'सेठ जैसे आये हो वैसे ही लौट जाओ वर्ना बहुत बुरा हो जायगा। मैं हल्ला कर दूंगी तो तुम पकड़े जाओगे।'

'सुखिया, मैंने दरवाजे की कुण्डी चढ़ा दी है। अन्दर कोई नहीं आ सकता। और अगर आ भी गया तो दरवाजे के बाहर खड़े मेरे लठैत उसका काम तमाम कर देंगे। फिर हल्ला करने से तुम्हारी बदनामी नहीं होगी क्या ?'

'सेठ मेरी बदनामी की बात छोड़ अपनी खैर मना। और चुपचाप यहां से लौट जा नहीं तो मैं तुझे जान से मार दूंगी।'

यह कहकर सुखिया ने उसे चले जाने का संकेत किया। पर सेठ वहां से हिला तक नहीं। उसने फूंक मार कर ढिबरी बुझा दी और फुर्ती से सुखिया को जा दबोचा व उसे नोचने-खसोटने लगा। सुखिया ने सेठ को एक धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया। इस बीच सुखिया ने अपना सब्जी काटने वाला चाकू हाथ में उठा लिया और दहाड़ कर बोली—'सेठ, अब भी वक्त है लौट जा, मेरे हाथ में चाकू है।'

सेठ बिना किसी परवाह के जिधर से आवाज आई थी, बढ़ने लगा। ज्योंही उसने सुखिया को अपनी बाहों में लेने की कोशिश की चाकू सेठ की छाती में पैवस्त हो गया। एक चीख रात के सन्नाटे को चीरती हुई पूरी बस्ती को जगा गई। सारे मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गये थे। लोगों ने देखा दवाइयों के अभाव में शंकर मरा पड़ा है। बस्ती के मशहूर सेठ की लाश से खून बह रहा है। सुखिया गुमसुम और उदास बैठी है और उसके हाथ में रक्त सना चाकू है। पूरी घटना सुनकर उसकी आखों में आंसू की बूंदें झिलमिला आई थी। उसने आंसुओं को उंगली से पोंछ कर हवा में छितरा दिया।

शाम का धुंधलका छाने लगा था। सूरज पश्चिम दिशा की ओर सरपट भागा चला जा रहा था।

उसने सोचा सूरज छिप रहा है तो क्या सूरज कल फिर निकलेगा और यह अन्धेरा छट जाएगा। सुखिया बेगुनाह है। वह उसे अवश्य बचायेगा। इस संकल्प को उसने मन ही मन दोहराया और अपने कदम हवालात की ओर बढ़ा दिये।

सूर्य-ग्रहण

॰ रमेशचन्द्र शर्मा 'इन्दु'

॰॰॰

मेरे होश सभालने से लेकर आज तक वही पुराने तरीके से मागने का इन लोगों का ढर्रा और वही दान दाताओं का दिखावा बना हुआ है। लगता है विज्ञान की हवा इन्हे स्पर्श तक नही कर पाई। दिन के यही कोई साढ़े तीन-चार बज रहे होंगे। मोहल्ले में कोलाहल मचा हुआ था जिसमे स्त्रियों, बच्चों का समवेत स्वर था। मैं चारपाई पर लेटा हुआ 'कादम्बिनी' का नया अंक पढ़ रहा था, उसे हाथ में लिये बाहर निकला, देखा तो लगा कि मेहतरों का सारा मोहल्ला ही उमड़ आया हो। समझते देर नही लगी। आज सूर्य-ग्रहण जो लगा था। उसी का अनाज मागने ये लोग, छोटी-छोटी बास की टोकरिया, टूटे-फूटे सिल्वर के कटोरे लिए निकले है, स्त्रिया, नग-धड़ग बालक मा के सूखे स्तनों को क्षुधा से चूसते हुये पीडा से बिलबिलाते हैं। सभी का एक हुजूम-सा था।

स्त्रिया बारी-बारी से प्रत्येक घर के द्वार पर जाकर उचित सम्बोधन से ग्रहण का अनाज माग रही थी—'काकी जी घँण का अनाज लाओ।' कोई कहती 'सासू जी या छोटी छोरी को तो द्यो'। सभी अपने घर के सदस्यों की गिनती करके अनाज माग रही थी। मुझे लगा उनका यह उपक्रम ऐसा था जैसे कोई रीते कुए को पत्तो से भरना चाहता हो।

आज सरजू की मा प्रात काल सूर्योदय से ही नहा-धोकर माथे पर चन्दन का तिलक चढ़ाये, गले में स्वर्ण-आभूषणो के बीच तुलसी की माला बाहर दिखाये आसन बिछाकर चबूतरे पर बैठी थी। अपने पास ही उसने एक परात में दो वर्ष पुरानी कीड़ो से खाई हुई ज्वार रख ली थी। वह मागने वालो का झुड अब वहा पहुच गया। सरजू की मा ने सर्राटे से घूमती हुई माला को ब्रेक लगाया। सभी को बारी-बारी से लेने को कहने लगी। माला को एक तरफ रख दिया। मानो उसे घूमने से विश्राम मिल गया हो, अन्यथा वह तो मदिर से लेकर गीत-गाली, चाक-भात, बुलावा-चलावा सभी जगह घूमते हुये उसका व्यक्तित्व बढाने में मदद करती थी। और हा—चुगली-चाटी, तेरी-मेरी करने के अवसर पर तो उसका महत्व तब और भी बढ जाता था, जब वह कहती—'राम कसम, माला हाथ मे है मै कोई झूठ थोड़े ही कहूं हू।'

वह सभी को बारी-बारी से एक-एक मुट्ठी ज्वार के दाने देकर अलग हटाने लगी। किसी-किसी को झिड़की देने लगी तो किसी को दुबारा लेने का आरोप लगाते हुये फटकार। औरतें अपने बालकों के साथ मोहल्ले से ग्रहण का अनाज माग कर लौट चली थी। सबसे पीछे जान-बूझ कर रह गई थी सुरज्या की बहू। उसका नाम तो घर वालो ने सूरज रखा था पर गाव में उसे इस आदर से कौन पुकारता सभी सुरज्या कहते थे।

मरजू की मा ने पराती से ज्वार मुट्ठी मे लेते हुए उससे कहा—'अरी तू तू काहे खडी रह गई। ले तू भी ले, जल्दी कर। जिससे दो घडी राम का नाम लू। मेरा तो एक घण्टा खराब कर दिया तुमने।' तभी उसने लपक कर पास मे रखी माला बाए हाथ से उठा ली। माला बायें हाथ मे भी उसी प्रकार घूमने लगी थी। उसके दोनो हाथ अभ्यस्त जो हो चुके थे।

मुरज्या की बहू अपनी बास की टोकरी आगे बढाते हुये, बडे दीन कातर स्वर मे लगभग घिघयाते हुये अपनी मातृभाषा मे बोली—'अजी अन्नदाता ! कांई फट्या-टूट्या कपड़ा-लत्ता की मेहरबानी करज्यो, थारा गरीब भगी हा।'

'बस यही तो कमी है तुम लोगो मे। जब देखो तब कपडा-लत्ता मागना इस महगाई मे रोज ही कपडे कहा से दे। और उतरने पर मै स्वय ही दे देती हू, ले देखती हू, कोई हो तो।' वह माला सटकाते हुए घुटने पर हाथ रख कर उठी। अन्दर से एक फटा-सा ब्लाउज लिये बाहर निकली, जिसके बटन पहले से ही काट कर रख लिये थे। बोली—

'ले पहन लेना। खूब चलेगा। थोड़ा-सा फट गया है। अमावस का दिन है उस पर यह ग्रहण लगा हुआ है अब झूठ भी तो नहीं बोला जाता।'

मुरज्या की बहू ने उसे लेकर टोकरी मे रख लिया। वह अब भी खडी थी और कुछ कहना चाह रही थी पर, कहे किस प्रकार। और मरजू की मा उसे जल्दी से जल्दी वहा से टिलाना चाहती थी, जिसमे वह प्रसग ही न आये।

मरजू की मा ने कहा—'चल अब क्यों खडी है। हम भी नहायेंगे-धायेंगे। सुबह से ही ग्रहण-दोष के कारण घर भर मे किसी के भी मुह मे अन्न का दाना तक नहीं गया। सरजू के पापा मदिर मे जाप कर लौट रहे होंगे। तुझे यहा खडी देखेंगे तो नाराज होंगे।'

मुरज्या की बहू को मानो कहने को सूत्र हाथ लग गया हो। हिम्मत करके बोली—'माभूजी ! बाबो सा सू पीज्यो म्हारा कडा (पाव का चादी का गहना) द देगा। थारा ब्याज और चुकती रुपया हिसाब कर पाई पाई लेल्या। काई दस बीस बहती लेल्यो।'

देख भई मुरज्या की बहू—लेन-देन के मामले मे मै कुछ नहीं समझती। इस मामले मे तू जाने या सरजू के पिताजी, उन्ही से बात करना। वे कार-व्यवहार मे बडान के पक्के है। रहा सवाल तेरे कडो का तूने करार पर रुपये नहीं लौटाये। अब तो एक महीना से अधिक समय हो गया। अब तू भला कहे किस मुह से माग रही है। मुझे तो उनसे बात करते डर लगता है। राम कसम मारा हाथ म है कुछ कहू नहीं।'

और वह बेचारी उदास मुंह निराशा मे खाली हाथ लौट आई। [illegible] उसके कडा रूपो मूर्ख-बाद का [illegible]
[illegible]
[illegible] 200) [illegible]

विडम्बना देखो उस कम्बख्त ने रु० भी दिये तो एक महीना बाद। जिसमें उसके गिरवी रखे कड़े मन्नू के पिताजी निगल गये। यह दोनों ही दीन से गईं।

× × ×

मैं घर से चलकर सेठ सत्यव्रत की दुकान पर आ गया। उन्होंने मुझे बैठने को एक बोरी डाल दी। धीरे-धीरे सूर्य अस्त होने को जा रहा था। पशु जंगल से रम्भाहट करते लौटने लगे थे। सेठ सत्यव्रत जी अपनी लालटेन का शीशा साफ करने लग गये। बीच-बीच में ग्राहकों को भी निपटा रहे थे। साढ़े पांच-छः बज चुके थे। देखा सामने से ही नंग-धड़ंग बालक, साक्षात दरिद्रनारायण के अवतार अपने हाथों में सिल्वर के कटोरे में 150-150 ग्राम 200-200 ग्राम अनाज लिये हुए आ रहे है, जिसे वे आज सूर्य-ग्रहण के समय मांग कर लाए थे। कोई गुड़ मांगने लगा, कोई मिठाई की गोली तो कुछ चावल के गुड़ में पगे लड्डू या फिर बिस्कुट मांगने लगा। कोई-कोई इनाम के लालच में ललचाई आंखों से चिट खींचने को कहता।

सत्यव्रत जी उन्हें उपेक्षा पूर्ण दृष्टि से देखते हुए बारी-बारी से उनका अनाज लेकर अदाज से ही किसी को पांच गोली, किसी को 2 बिस्कुट या एक चावल का लड्डू या किसी को इनामी चिट देते हुए फटकार कर भगाने लगे। और बालक अपनी इच्छित चीजें पाकर, लाभ-हानि की चिन्ता से दूर बड़े आत्मतोष के साथ उछलते-कूदते, कटोरों में अपनी इच्छाओं को समेटे या अपने भाई-बहनों के हिस्से करते हुए लौटने लगे।

सत्यव्रत जी फुरसत पाकर मेरी ओर मुड़कर देखते हुए अनाज को कटे हुए पीपे में डालते हुए बोले—साहब चीजों के भाव बाजार में इस कदर बढ़ गए, बस पूछो मत। हर चीज डोढ़ी-दूनी हो गई। और फिर आजकल पांच पैसे दस पैसे का आता भी क्या है? पर बच्चों को तो देना ही पड़ता है। और इस प्रकार उन्होंने मेरे सामने बच्चों से छीना गया अनाज तथा दी गई वस्तुओं की झेंप को बड़ी सफाई से मिटाना चाहा। उसका भाव मैं समझ गया था।

मैंने कहा—'हां भाव तो सभी चीजों के बढ़े है। देखो ना। इधर अनाज में भी तो काफी तेजी आ गई है।

उन्होंने झेंपते हुए कहा—'कहां साहब ! अनाज तो वहीं पड़ा है, मंडी में कोई पूछता ही नहीं।' और फिर वे मुझे बाजार में रहे पिछले दिन के भावों की जानकारी देते हुए समीक्षा करने लगे।

तभी सामने से सुरज्या भंगी अपनी धोवती की फटी लांग में एक सवा किलो करीब अनाज लिए, दूसरे हाथ में फूटा हुआ चीनी-मिट्टी का कप, उघाड़ा शरीर, नंगे पांव सामान लेने आ गया। आते ही उसने राम-राम की। जिसके बदले में सेठ जी तो मौन ही रहे। मानो उन्होंने सुना ही नहीं हो।'

उसने कहा—'ल्यो लाला जी जल्दी से सामान दे दो। घर पर बालक भूख से बिलबिला रहे हैं।

'घर पर ही पहुंचा देता। खबर कर दी होती।' सेठ जी ने तीखे स्वर में कहा-

गरदन उठाते हुए तीव्र स्वर में कहा। फिर मेरी ओर देखते हुए बोले—'देखा साहब! आज देर नहीं हुई ऊपर से यह तुर्रा कि कितनी देर से खड़ा है। ठहर जा पहले भैंस बाँध कर आता हूँ तब सामान दूँगा।' सेठ जी भैंस बाँधने चले गए। दस मिनट तक वह उसी ओर देखता रहा। आखिर लौटने पर लकड़ी की डंडी वाली तराजू का पलड़ा बढ़ाते हुए बोले—

'क्या लेगा? जल्दी बता?'

'लाला जी नहीं साहब—' उसने नम्रता से कहा।

'लाओ दिया। एक रुपया पाँच पैसे का हुआ है। एक किलो दो सौ ग्राम से कम ही है। अभी तो छानने पर सौ-डेढ़ सौ ग्राम कूड़ा निकल जायेगा।' उन्होंने अनाज में हाथ डालकर उसे ऊपर से डालते हुए मुँह से फूँक मारी जिसमें कुछ हल्का-सा कूड़ा और मिट्टी-गर्द उड़कर दूर जा गिरा।

—'क्या भाव लगाया साहब।' उसने पूछा।

'देखा सेठ साहब! एक किलो अनाज लेकर चला है और भाव पूछता है मंडी का।' उसने मेरी तरफ मुँह करके कहा। अब वह उपेक्षा और हिकारत से देखता हुआ बोला—

—'भाव क्या लगाया है? यही रुपया किलो लगा लिया है। वर्ना तो नब्बे पैसे किलो ही लेता।' इस प्रकार उसने मेरे मन में उसके ठग जाने का और कम पैसे लगाने का फर्क और उसके प्रति उठने वाली गला काटने की भावना को मिटाने का भरसक प्रयत्न किया। बोला—

'अब साहब ले नहीं तो क्या करें इन्हें उधार भी तो कहाँ तक दें। और फिर ये पाव-पाव भर दाना लाते हैं, कूड़े-करकट से भरा सभी तरह का मिला जुला अनाज भला उसे अलग भी तो नहीं किया जा सकता। अपना क्या है गरीब आदमी है, इनका काम चल जावेगा।'

तभी मुरज्या ने कहा—अजी लाला जी ऐसा क्यों करते हो? कल तो आपसे ही डेढ़ रुपये किलो लेकर गया हूँ।'

अबकी बार लाला जी तनिक उत्तेजित हुये। झूठा-सा गुस्सा दिखाते हुये बोले—'हम क्या यहाँ दुकान खोल कर मक्खी मारने बैठे है? चल उठा अपना अनाज। मैं क्या तुझे घर बुलाने गया था।' उन्होंने तपाक से अनाज वाला पलड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया।

इस बार वह उसके व्यवहार एवं वज्र वाणों से आहत होकर रह गया। परास्त सैनिक-सा सिर नीचा किये खड़ा रहा। उसे परिस्थितियों ने बड़ी मजबूती से अपने सिकंजे में जो कस रखा था। वह चुप था। उसे लगा मानों कोई उसे ही लील जाना चाहता है, सूर्य-ग्रहण की तरह। और उनमें एक केतु ये लाला जी भी तो हैं।

उसने हताश स्वर में कहा—'दे दो साहब।'

'क्या लेगा जल्दी बोल—दो घण्टे हो गए खड़े-खड़े?'

अब उसने हिसाब लगा कर बताया—'आठ आने के आलू दे दो।'

'और'—सेठ जी ने संक्षिप्त में पूछा।

'तीस पैसे का तेल और चार आने की मिर्च।' यह कहकर उसने अपना फूटा हुआ मिट्टी का कप आगे बढ़ा दिया।

मिर्च और आलुओं को अपनी लाग में रखते हुए उसने एक चव्वनी बढ़ाते हुए कहा—

'एक माचिस और काली मिर्च दे दो।' यह कहकर वह कुछ देर तक सोचने लगा जैसे कुछ लेने से रह गया हो।

इसी बीच उसकी बगल में खड़ा छः वर्ष का नगा बालक उसे हाथ से छूते हुए अपने लिए गोलियो (मिठाई) की याद दिलाने लगा जिसका कि वादा करके वह उसे यहा रोने से मना करते हुए लाया था। उसे छिड़कते हुए कहा—'ठहर जा।'

लाला जी ने चव्वनी उठाते हुए कहा—'इसमे माचिस और काली मिर्च नही आ सकती एक ही चीज आवेगी। कोई-सी ले लो।'

अबकी वार उसने अपनी आट से दस का सिक्का जो गोलियो को बचा रखा था दूर से ही सम्भालते हुए कहा—'लो साहब अब तो दे दो।' पर हां ! एक छोटी-सी हल्दी की गाठ जरूर दे देना।'

सेठ जी अब की बार भन्ना उठे जैसे चलते-चलते तांगे का घोडा बिदककर भड़क उठा हो।—"हू ! क्यो नही, अभी हल्दी मांगी है, फिर दो कली लहसुन मांगना, फिर एक सौंठ की काकरी और पीछे इस पिल्ले को (पास में खड़े हुए बच्चे की ओर अंगुली करते हुए) मिठाई की गोली। इस दुकान को ही उठा ले जाओ। तुम्हारा बाप कमा कर रख गया है। चल-चल आया साला खरीद करने। 'पाव चून तिबारे रसोई'।"··· और न जाने क्या-क्या कह गये।

वह सुनता रहा बेचारा खिसयाना-सा। झेंप मिटाने हेतु जल्दी-जल्दी सामान सभाल कर अपनी जीर्ण-जीर्ण धोवती की लाग में समेट हाथ में तेल का कप लिया। बच्चे को साथ ले चला—जो कभी-कभी पीछे मुड़कर ललचाई नजरो से काच की बरनियों मे रखी गोलियो को भी देखता जा रहा था। मानो उसकी इच्छाओं को भी आज किसी केतु ने ग्रस लिया हो। उदास ! उदास !!

× × ×

आकाश मे भगवान सूर्य-देव ग्रहण से मुक्त होकर निकल आये थे। थके-मादे-से निस्तब्ध। लाल सुर्ख। मानो अपार शक्ति पुंज होने पर भी अपनी शक्ति का अहसास न होने से ही परास्त हो गये हों। लगता था किसी ने उन्हें सद् रक्त से तिलक किया हो। या किसी ने उनके सरक्षण में जघन्य मानवीय क्रूर कर दिया हो और उनका चेहरा तमतमा उठा हो।

मुरज्या लौट चला। तभी उसकी दस-बारह बरस की लड़की घबराई हुई आई। रोते-रोते बोली—'काका ! जल्दी चल !! कृपाल सिंह बाबा सा ने अपना पूरा घेटा (सूअर का बच्चा), छतरी वाले खेत मे मार दिया है और जीजी (मां) का भी हाथ तोड दिया है। घर नहीं है।'

बालिका ने दो वाक्यों में घटना की सम्पूर्ण जानकारी और स्थिति की भयानकता देकर उसकी पत्नी बेहोशी का पता बता दिया। उसने बताया था कि किस प्रकार सूअर निगाह बचाकर साथ उनके खेत में चला गया। ठाकुर साहब पहले ही खार खाये बैठे थे। मुरज्या ने पशुओं के चारे-सानी के लिए बड़ा-छावड़ा जो नहीं बनाया था। पहले पैसे भी बार-बार मांगता था। वह सुनते ही सन्न रह गया। मानों किसी ने उसके सिर पर कोई भारी पत्थर मार दिया हो। वह तिलमिला उठा घबराहट में हाथ का पल्ल छूट गया। दूसरे हाथ से कप भी छूट गया। आलू लुढ़कते हुये भागने लगे कि, मानो वे भी मानवीय अत्याचारों को देख कर घबराकर पृथ्वी के गर्भ में छुपने जा रहे हों। और तेल तो शर्म के मारे पृथ्वी को छूते ही लुप्त हो गया। सारा सामान इधर-उधर इस कदर बिखरा पड़ा था मानो किसी दीन-हीन लावारिश की लाश के टुकड़े हों, जिन्हें किसी ने कत्ल कर अव्यवस्थित रूप में पटक दिया हो।

वह घबराया हुआ सीधा छतरी वाले खेत पर ही गया। ठाकुर साहब अब भी लाठी ठुड्डी से लगाये खेत की मेड़ पर लाल आखें किए खड़े थे। देखते ही गालियां बकने लगे। देखते ही मुरज्या का शरीर कांप उठा। हिम्मत कर चुपचाप खून में लथ-पथ हुये सूअर को उठाया, आंसुओं से भीगी आखें तथा भारी मन से ले चला। लोगों की आखें देखती रही उसे और निरीह मृत सूअर को। किसी के मुंह से एक भी तो शब्द नहीं निकला उसके पक्ष में।

कोई ठाकुर साहब से कहता भी क्या? वे इस गांव के जागीरदार, मुखिया और दानी-मानी, धर्मात्मा जो ठहरे। पिछले साल ही तो हरिद्वार, काशी, रामेश्वरम् और द्वारिकाधीश होकर आए हैं। छाप भी तो लगवाई। मंदिर में दर्शन करके भोजन करते हैं, अमावस और पूर्णमासी को ब्राह्मणों को जिमाना नहीं भूलते। अब उनके खिलाफ मुंह खोले भी तो कौन!

उसने मरे सूअर को आंगन में लाकर धम्म से डाल दिया। उसकी बहू दर्द से सिसक रही थी। घर में मातमी सन्नाटा छाया हुआ था। पांच सौ रुपये की करारी चोट हृदय को बेध गई। आज उसके सारे घर को ही ग्रहण लग गया था। खाना न बना बच्चे भूख से रो-धोकर सो गए। रात पड़ने लगी। आंगन में मरा सूअर पड़ा था।

बचपन में मां कहती थी, राहू और केतु अपने भालों से सूर्य को गोदते हैं जिससे सूर्य भागकर आकाश में छुप जाता है। पर यहां तो पग-पग पर कितने ही राहू और केतु उगे हुए हैं। जो मुरज्या जैसे दीन-हीन के सम्पूर्ण परिवार पर अपनी छाया डालते हुए ग्रसते ही जा रहे हैं। *आकाश के सूर्य को तो कुछ समय बाद मुक्ति मिल जायेगी पर* इनकी मुक्ति पर मुझे आज भी प्रश्न चिन्ह लगा दिखाई पड़ता है। जो अभी न जाने कितनी पीढ़ियों तक लगा रहेगा।

भ्रम भंग

• बसवंत चौधरी

• • •

मैं अपने कमरे में बैठा हुआ अखबार में छपी अपनी कहानी को पढ़ रहा था। यह कहानी अब तक मैं तीन-चार बार पढ़ चुका था लेकिन मुझे हर बार उसमें नवीनता महसूस होती। कहानी यथार्थ के धरातल पर लिखी गई थी, इसलिए सजीवता उसका मुख्य आकर्षण था। कहानी पढ़ने के बाद पाठक, कहानी के नायक के प्रति जरूर सहानुभूति महसूस करेगा, ऐसा मेरा विश्वास था।

मेरी इस कहानी का नायक, सड़ी-गली परम्परागत रूढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाता है और अंत में असफल होता है। असफल होने पर उसकी जो मनोदशा होती है, उसी का मार्मिक चित्रण किया है मैंने।

मुझे लगा, इस कहानी को पढ़ने के बाद मेरी काफ़ी चर्चा होगी और मैं चोटी के लेखकों में गिना जाने लगूंगा। मेरी यह कहानी 'मील का पत्थर' साबित होगी, ऐसा भ्रम अनजाने ही मेरे अन्दर घर करने लगा।

दरवाजे पर 'खट्'''खट्' की आवाज होती है। खोल कर देखता हूं। सामने सेठ घनश्याम दास जी खड़े हैं।

"तुम्हारे पिताजी कहां हैं, बेटे ?" सेठजी पूछते हैं। "जी ! बाहर गए हुए हैं। कोई काम हो तो बता दीजिए, मैं आने पर बोल दूंगा।" सेठजी को अंदर लिवाते हुए बताता हूं।

"नहीं, कोई खास बात नहीं, यूं ही मिलने चला आया था।" सेठजी कुर्सी पर पसरते हुए बोले।

मैं अखबार के पृष्ठ खोलता हूं, फिर बंद कर देता हूं। "देखिए, यह मेरी कहानी है" कह कर उन्हें अपनी कहानी पढ़ाना चाहता हूं। लेकिन कह नहीं पाता। संकोच होता है कि सेठजी सोचेंगे—अपने मुंह मियां मिट्ठू बन रहा है। अखबार उनके हाथों में थमाते हुए कहता हूं "मैं चाय लाता हूं, तब तक आप इसे पढ़िए।"

सोचता हूं—चाय लेकर आऊंगा तब तक सेठजी कहानी पढ़ चुके होंगे। लेखक के रूप में मेरा नाम देख कर चौंक उठेंगे। चाय लेकर आया तो देखा—सेठजी 'व्यापार दर्पण' स्तम्भ में गुड़-चीनी के भावों पर आखें गड़ाए बैठे हैं। अखबार एक तरफ रख कर चाय की घूंट गले से उतारी और बोले, "आखिर कहां पहुंचेगी ये महंगाई ?"

मैं चुपचाप चाय सुड़कता रहता हूं।

"हू।" मैं बेमन से समर्थन करता हू।

सेठजी की बातो मे मुझे कोई रुचि नही रह गई है। उनके चले जाने के बाद सोचता हू कि रूपये-पैसे के मोह जाल में फसे सेठजी साहित्य के बारे मे क्या जानें ?

अखबार हाथ मे लेकर चाचाजी के कमरे की ओर जाता हू। चाचाजी फौज मे सूबेदार हैं। आजकल छुट्टी पर आये हुए हैं। कहानी पढने के बाद वे आश्चर्यचकित रह जायेंगे और शाबाशी देते हुए कहेंगे, "अरे ! तू तो बडा छुपा रुस्तम निकला !" कल्पना कर मन ही मन पुलकित होने लगता हू।

चाचाजी के पास उनके मित्र शर्माजी बैठे हुए है। चाचाजी के हाथ में अखबार थमाते हुए कहता हू, "इस अक मे मेरी भी कहानी छपी है जरा कहानी के बारे में अपनी राय व्यक्त करें।"

उन्होने जैसे मेरी बात सुनी ही नही। मैंने देखा, उनकी नजरें 'पाकिस्तान की घोषणा : काश्मीर हमारा है' खबर पर टिकी है। फिर उनकी नजरें फिसल कर 'विदेशी जासूस गिरफ्तार' खबर पर अटकती है। इसके बाद उन्होने सरसरी तौर से देखते हुए सारे पन्ने पलट दिए। "कोई खास खबर नही !" कहते हुए अखबार शर्माजी की ओर बढा दिया।

शर्माजी ने पन्ने पलटने शुरू कर दिये। जिस पृष्ठ पर मेरी कहानी छपी थी, वहा आकर उनके हाथो मे ब्रेक लग गए। मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा। उस समय मुझे कितनी खुशी हुई, मैं बयान नही कर सकता।

"कैसी लगी ?" मैं शर्माजी से पूछता हू।

"क्या ?"

"मेरी कहानी।"

"मैंने नही पढी, अखबार पुनः खोलते हुए बोले, "मैंने तो 'भविष्य फल' देखा है ! लीजिए, अब पढ लेता हू।"

उनको फिर अखबार मे उलझता देखकर चाचाजी बोले, 'अब छोडो भी यार !' और उन्हें अपने युद्ध के सस्मरण सुनाने लगे, "हा ! तो मैं तुम्हे बता रहा था···उस खदक मे बंब गिरने के बाद भी मैं कैसे बचा···"

अखबार फिर मेरे हाथ मे आ गया। मैं निराश होकर अपने कमरे मे लौट आया। सोचने लगा—आम आदमी और कहानी मे इतनी दूरी क्यो है ? जब इसमे किसी की रुचि ही नही है तो फिर क्यो लिखा जा रहा है। रोजाना ? किसके लिए ? जैसे निरर्थक प्रश्न मेरे दिमाग मे चक्कर काटने लगे।

"मीनू···! ओ ऽऽ मीनू !!" बाहर से मेरी बहन की सहेली बरखा आवाज लगाती है।

"आ रही हू।" अन्दर से मीनू चिल्लाती है।

बरखा कविता लिखती है। मेरी बहन की सहेली है इसलिए मुझे अपना भाई मानती है।

"बरखा ! कोई नई कविता लिखी है क्या ?"

"लिखी है, भैया !" वह हँस कर जवाब देती है।

"तो सुनाओ—"

मैं बरखा से कविता सुनाने का आग्रह तो करता हूं, लेकिन इसमें मेरा भी स्वार्थ है। अगर मैं बरखा की कविता सुनूंगा तो स्वाभाविक है, वह भी मेरी कहानी पढ़ेगी।

बरखा अपनी कविता द्वारा 'तारे जमीन पर लाती रही, आसमान में आग लगाती रही, आवाज को तलवार और शब्दों को तीर का रूप देती रही, और मैं उसकी कविता खत्म होने का इन्तजार करता रहा।

आखिर उसकी कविता खत्म हुई। मैंने अपनी कहानी वाला पृष्ठ उसके सामने कर दिया। अभी वह दो लाइनें भी मुश्किल से पढ़ पाई होगी कि मीनू तैयार होकर आ गई। बोली, 'कॉलेज चलो, बरखा ! पहले ही देर हो रही है।'

बरखा ने चैन की सांस ली और अखबार मेज पर पटकती हुई मीनू के साथ बाहर निकल गई। बाहर जाते हुए बरखा के चेहरे पर सन्तोष था कि मीनू ने उसे सही वक्त पर मुसीबत से बचा लिया।

मुझे लगा, मेरी रचनाओं के खिलाफ जानबूझ कर षड्यन्त्र रचा जा रहा है। इस कहानी के माध्यम से शिखर पर पहुंचने का जो भ्रम मैंने पाला था, अब धीरे-धीरे टूटने लगा था।

मैंने अपनी कहानी को एक बार फिर पढ़ा और चारपाई पर लेट, आंखें बंद कर सोने की असफल कोशिश करने लगा।

○○○

पृष्ठभूमि

० सुदर्शन पानीपती

०००

कथाकार एक कहानी लिखना चाहता था। वास्तव मे पिछले वर्ष कई दिनो से ही उसकी यह इच्छा थी कि वह लिखे किन्तु उसकी तबीयत उसका साथ नही दे रही थी, उसके मस्तिष्क मे कई कथानक घूम रहे थे। वे सब के सब कहानियो के साचो मे ढाले भी जा सकते थे। किन्तु फिर भी इस सम्बन्ध मे उसका प्रत्येक प्रयास असफल ही रहा था। पहली कोशिश मे उसे यह एहसास हुआ था कि लिखने के लिये जिस समाधिस्थ साधना की आवश्यकता होती है वह गर्मियो के तपते हुये दिनो मे आसानी से नही की जा सकती। कभी लू और गर्द तथा कभी घुटन, उमस और बेचैनी, एक पल के लिये भी कही सकून नही मिलता। वातावरण में रिसती हुई तमतमाहट मृत्यु के भय की तरह उठते-बैठते परेशान किये रखती है। न इस पहलू चैन न उस उस पहलू आराम, कही *टिकना नसीब ही नही होता। वह चिड़ गया था और सोचने लगा था कि गर्मी के प्रकोप* से बचने के लिये उसे एक पखा अवश्य खरीद लेना चाहिये। गत कई वर्षों से इला भी तो पखा खरीदने के लिये कह रही है, उसे ख्याल आया था। मगर इस ख्याल से उसे प्रसन्न करने की अपेक्षा और भी ज्यादा कसमसा दिया था। उसे महसूस होने लगा था कि उसके चारो ओर अभाव का इतना सगीन पहरा है कि वह अपनी कोई भी मनो-कामना पूर्ण नही कर सकता। उसने सख्त भूल की है। उसे इस विचार का गला अपने हाथो मे घोट देना चाहिये, वरना उसकी बीमार मा का इलाज बीच मे ही रह जायेगा। उसे याद था कि उसके सहयोगी अस्लम मिया ने उसे कई बार चेताया था कि चाहे उसकी एकमात्र धोती पर दो की जगह चार पैबद और लग जायें, उसे मा का इलाज अवश्य कराना चाहिये। तभी से मा का स्वास्थ्य तो सभलने लगा था किन्तु उसकी अपनी धोती पर पैबिदो की सख्या भी तेजी से बढने लगी थी। आखिर इला ने खिन्न होकर एक दिन उसे कह ही दिया कि वह उस चीथडे को आखिर कहा-कहा से सिये? उसने पखा खरीदने का विचार तर्क कर दिया था और कागज-पैन्सिल छोड कर कमरे मे टहलने लगा था। वह लिखना उसके बस की बात नही है परन्तु उसके बस मे है क्या? एक नया विचार पैदा हुआ था और इससे पूर्व कि अपने आपको सात्वना देने के लिये वह मन ही मन कोई और तर्क ढूढने का प्रयास करे, उसके दफ्तर जाने का समय हो गया था।

उसके पश्चात् कई दिन तक वह लेखन की कामना तक करने का साहस नहीं

कर पाया था। हां, कभी-कभी वह उन कथानकों की सार्थकता पर थोड़ा बहुत गौर अवश्य कर लेता था जो आवारा बादलों की भांति उसके मस्तिष्क में बार-बार घूमने लगते थे।

चम्बेली को उसके पति सरूप ने भरी जवानी में छोड़ दिया। अपना और अपने बच्चों का पेट पालने के लिये वह बेचारी बहुत दिनों तक मेहनत-मजदूरी करती रही किन्तु जब फिर भी भरपेट खाने का अभाव रहा तो लज्जा के बंधन तोड़कर खुल खेली। सबसे पहला बार रघु बनिये पर हुआ। यार लोग उसकी निन्दा भी करते थे और उसके भाग्य को सराहते भी न थकते। साला काला कलोटा है, बाल खिचड़ी हो आये हैं, न बात करने का ढंग आता है न हँसने का सलीका मगर किस्मत देखो कि हीरे से आशनाई किये बैठा है। देखते ही देखते रघु खिजाब लगाने लगा, वायल की धोती और कुर्ता पहनने लगा। मुंह में पान की गलोरी दबाये वह इस अन्दाज से पीक थूकता कि मुहल्ले के आवारा लौंडों के तन-बदन में आग लग जाती। अकस्मात् एक दिन चम्बेली ने उसे अपनी बिसाती की दुकान पर ही पीट दिया। वह चिल्ला रही थी—'तू मेरी इज्जत लूटना चाहता है।' उस समय रघु शर्म से पानी-पानी हो रहा था किन्तु रात को भंग के नशे में अनाप-शनाप बकता हुआ वह अपने अनादर की टीस को कम करने का प्रयास अवश्य कर रहा था।

—ऐसी बात थी तो साली मेरे पास आई ही क्यों थी? पांच का नोट थामकर कहती है कि इकादशी की वर्ती हूं, आज नहीं कल। मैंने बाजू पकड़ लिया तो भौंकने और काटने लगी।

लोग कहते हैं कि परमा शादी विवाह से पूर्व अपनी भाभी से मिला हुआ था। परमा का बड़ा भाई देवता है। वह सब कुछ जानता हुआ भी फरेब खाता रहा। गत सप्ताह परमा की शादी हो गई और उसकी बहू के आने के दो ही दिन बाद घर में खूब झगड़ा हुआ।

दोनों भाइयों में लाठियां चल गई। सारी बात का पता तो किसी को नहीं है पर मुहल्ले भर में शोर एक ही बात का है। परमा की बहू ने सत्यनारायण की कथा सुनने के लिये एकत्रित स्त्रियों के सम्मुख खुद ही यह बताया था कि उसके ज्येष्ठ ने अपनी पत्नी की अनुपस्थिति में उससे छेड़खानी शुरू कर दी थी। मनमानी करने लगा था। वह चुप रही मगर जब परमा बाहर से लौटा तो राज खुलते ही झगड़ा शुरू हो गया। अब दोनों हस्पताल में पड़े हैं।

डालू ठाकुर जब शराब पी लेता है तब अपने मन्दिर की छत पर चढ़ कर चिल्लाने लगता है। अपने हाथों को दांतों से काटने लगता है और बकने लगता है कि अगर उसके बाप ने उसकी शादी नहीं करनी थी तो उसे पैदा ही क्यों किया था? लोग कहते हैं कि डालू अभिशापित है। उसने एक सन्यासी को धक्के मार कर मन्दिर से बाहर निकाल दिया था उसी की बददुआ से वह शारीरिक रूप से नाकारा हो गया है। वह विवाह के योग्य ही नहीं है।

बदलू चौधरी का बेटा सुरजू जब से खेत मजदूर यूनियन का प्रधान चुना गया है एकदम समाजवादी बनने लगा है। बात-बात में लेनिन और स्टालिन की चर्चा करने लगता है। लाल झंडे की प्रशंसा करते नहीं थकता। उस दिन भाषण देते-देते बहक गया। कहने लगा कि उसकी मा ने उसे घोड़ों के अस्तबल में जन्म दिया था। उसने अपनी सुहागरात बैलों के लिये भूसा भरी कच्ची कोठरी में मनाई थी। जब उसकी यह दशा है तो भारत के दूसरे बड़े-बड़े समाजवादी नेताओं की क्या हालत होगी? उसे अपनी तुलना बड़े नेताओं के साथ करते सुनकर एक नौजवान श्रमिक सहसा हँस दिया तो सुरजू भुनभुना गया। बोला, नहीं आ सकता, इस बदनसीब देश में समाजवाद कभी नहीं आ सकता। उसे सदैव एक ही शिकायत रहती है कि लोग समाजवाद को समझने का प्रयास ही नहीं करते वरना यह ऊंच-नीच, भेद-भाव एक ही रात में खत्म हो सकते हैं। एक दिन सुरजू ने चंदा न देने पर रसालन को डांट दिया। बुढ़िया को भी गुस्सा आ गया। बोली—रे छोकरे, धीरे बोल, रहमत मौलवी की तरह बकता हो न जा, तू बदलू का होता तो ऐसे जुबान न चलाता। मैं तेरी दबेल नहीं हूं। जा, नहीं देती चंदा। मुझे न तेरा डर है न तेरे लाल झंडे का। रसालन की जली-कटी सुनकर सुरजू दुम दबाकर भाग गया था। यह बात भी मुहल्ले के आवारा लौंडों ने ही उड़ाई थी।

कथाकार 'उन अधूरे' खाकों को लेखन की कसौटी पर रखता और सोचता कि वे सब सामंतवादी युग से एकदम हट कर जन-साधारण से सम्बन्धित हैं। उसका विचार था कि इन खाकों में रंग भर कर निश्चित रूप से वह ऐसे लोगों की समस्याओं का प्रतिपादन करेगा जिनके सम्बन्ध में बुद्धिजीवियों ने अधिक नहीं सोचा। उसे लगता था कि सरकस में लगती कलाबाजियों के समान इस पल-पल बदलते जीवन में लोग इतने व्यस्त है कि वे एक दूसरे की समस्याओं से अपरिचित, अपने-अपने रास्ते पर सरपट भागते जा रहे हैं। वह इस नरकसनुमा जीवन में उपेक्षित लोगों के किरदारों का चरित्र-चित्रण करना चाहता था। एक ओर बड़े नगरों की असीम सड़कों पर दौड़ती बसों की गड़गड़ाहट का शोर, विभिन्न समस्याओं से उत्पीड़ित मनुष्यों की भागदौड़, फुटपाथों पर धूप की तपन और बरसात की सीलन को भोगते कीड़ानुमा लोग और दूसरी ओर नगर के पड़ोस में ही बसे एक छोटे कस्बे के ये निरीह प्राणी, ये सब उसकी रचनाओं की सजीव भूमिकायें बन सकते है, उसका ख्याल था।

हर रोज दफ्तर जाते हुए, यह वह कस्बे से नगर तक का चार मील का रास्ता साइकिल पर तय करता है तो कितने ही ऐसे दृश्य उसे देखने को मिलते है जो उसके अंतस् में छिपे कलाकार को झकझोरने लगते हैं। उसके देखते ही देखते उस दिन कोयला चुगती हुई, वह नीली आंखों वाली लड़की शंटिंग इंजन के नीचे आकर कट गई थी। उसको सहयोगिनी बुढ़िया को शायद उसके मरने का जरा भी अफसोस नहीं था।

—यह साली कोयला सस्ता बेच कर हमारा भाव गिराती थी। उसी की सजा मिली है इस पापिन को, वह कह रही थी। मालरोड पर एक मनचले ने राह चलती हिप्पी लड़की की कमर में चुटकी भर ली थी—'यू डैम इंडियन', वह चीखी हुई

उसकी ओर बढ़ी थी और वह निकट से गुजरती हुई स्थानीय बस के हेंडलवार में लटक गया था।

—गुड शो, 'साफ्ट ड्रिंक्स' नामक स्टाल पर खड़े उस लम्बे बालों वाले लड़के ने हमाकत की थी तो वह लड़की दांत पीसती हुई उसे घूरने लगी थी,—यू सिल्ली लोफर, वह बुड़बुड़ाती हुई निकल गई थी।

उस दिन उसने आधुनिक जीवन को सरकसनुमा होने की संज्ञा दी थी। वह अभी सोच ही रहा था कि पीछे से आती हुई एक तेज बस के हार्न की अस्त आवाज ने उसे चौंका दिया था। वह साईकिल से उतर पड़ा था और सोचने लगा था कि वह इस माहौल की पृष्ठभूमि पर अवश्य लिखेगा। उसी सांझ वह कलम पकड़े और कागज पर नजर टेके, मछली के शिकारी की भाँति काफ़ी देर बैठा रहा था। मगर उसका सारा प्रयास असफल रहा था। उसके मनोभाव कहानी के रूप मे ढल ही नहीं पाये थे। उसके बाद भी उसने कई कोशिशें की थी किन्तु हर बार किसी न किसी विघ्न ने उसके भावों का तारतम्य छितरा दिया था और वह मायूस होकर दफ्तर चला जाता रहा था। परन्तु आज मन ही मन उसने निर्णय ले लिया था कि वह काहनी अवश्य लिखेगा। वैसे भी वह दिन छुट्टी का दिन था। मां कुछ दिनों के लिये गांव चली गई थी। एक दिन पहले रेडियो ने मानसून के आगमन की भविष्यवाणी की थी और अगले दिन तड़के से ही आकाश बादलों से अटा हुआ था। ठंडी हवा चलने के कारण तपन काफ़ी घट गई थी। जम कर बैठना आसान हो गया था।—वर्षा के आसार है, उसे ख्याल आया और वह लिखने बैठ गया। वह सोचने लगा कि उसे क्या लिखना चाहिये और कहां से शुरू करना चाहिये? चम्बेली का रघु को पीटना, डालू का शराब के नशे में मन्दिर की छत पर चढ़ कर चिल्लाना, परमा बाढ़ी और उसकी भाभी के रोमांस का किस्सा, नीली आंखों वाली लड़की की मौत अथवा हिप्पी लड़की की आत्मरक्षा की कहानी, नहीं कुछ अन्य तथा अतिरिक्त। इनमें से किसी पर भी शायद अच्छी कहानी न लिखी जा सके और भाग्य फिर वही रहे कि सम्पादक के अभिवादन तथा खेद सहित अस्वीकृत लौटे।

वह उठ कर कमरे में टहलने लगा, मानो किसी बहुत बड़ी समस्या का समाधान तलाश कर रहा हो। वैसे भी उसकी यह आदत बन चुकी है कि चिन्तन के क्षणों में वह इसी अन्दाज में टहलने लगता है। इला ने किचन में से आवाज लगाई—मैं कहती हूं आज तो मौसम बड़ा सुहावना है, आप खायें तो थोड़े पकौड़े बना दूं। वह चुप रहा और पहले की भाँति इधर से उधर डग भरता रहा।

—अजी सुनते हो, मैं कहती हूं कि आप खायें तो थोड़े पकौड़े बना लूं।

वह चिढ़ गया, कुछ सोचने ही नहीं देती।

—हां, हां, बना लो, जो जी चाहे बना लो। उसने तनिक खीझ कर उत्तर दिया और सोचने लगा कि आज भी वह कुछ नहीं लिख सकेगा। इला को बात करने की बीमारी है। मां की अनुपस्थिति में यह बीमारी एकदम उग्ररूप धारण कर लेती है। पिछली बार भी जब मां अपने भाई के पास गांव चली गई थी तो दो ही दिन में इला ने उसका

दिमाग चाट लिया था। उनके दहलीज मे पाव रखते ही सारे मुहल्ले की बातें, नगर के कस्बे मे आने वाली अफवाहे और न जाने कहा-कहा और किधर-किधर से सुनी सुनाई कह डालती थी। अकस्मात् इला कमरे मे आ गई।

—मैं कहता हू आज सुबह-सुबह आपने मौन धारण कर लिया है ? दो दिन के लिए बुढिया के पहरे से जान छूटी है तो आपने भी चुप्पी साध ली है। आखिर माजरा क्या है ?

इला एकदम पूरे मेकअप मे थी। उसे लगा कि उसका यह पूर्वानुमान गलत था कि वह किचन मे काम कर रही है दरअसल वह मेकअप कर रही थी। उसके मेकअप का सामान भी तो किचन मे ही रखा है घर मे दूसरा कमरा नही है, यह बात वह भूल ही गया था। पकाने और खाने के लिये केवल रसोई ही तो है। उसे अपनी गलती का एहसास हुआ तो वह झेंपता हुआ मुस्कराने लगा। इला भी मुस्करा दी।

इला को बनी-सवरी देखकर वह रोमाचित हो गया। साधारण वस्त्रो मे भी इला कितनी खूबसूरत नजर आती है, एकदम सरसो की डठल-सी लम्बी और पतली। उसने आगे बढ़कर उसे अपनी बाहो मे समेटना चाहा।—छोडो जी, इस बनावट की क्या जरूरत है। कोई मन से चाहे तो न ? आपको इतना सोचने की फुर्सत ही कहा है कि घर मे पत्नी भी है ? इला ने तनिक सकुचाहट से कहा मगर वह बाहो के घेरे से मुक्त न हो सकी।

बादल की एक भयानक गर्ज के साथ ही वर्षा की बौछार अन्दर तक आने लगी। अब देखते ही देखते चूने लगेगी। सामान भीगने लगेगा। एक भी बरसात ऐसी नही गुजरती जब छत न टपकने लगे। कथाकार विचलित हो उठा। उसकी बाहो का घेरा अकस्मात् ढीला पड़ने लगा। सेहन मे कपडे सूख रहे है। लकडिया और अगीठी भी वही रखी है। इला को ख्याल आया और वह भाग कर बाहर चली गई।

कथाकार ने आह भरी और गुमसुम खडा छत की ओर घूरने लगा। कई वर्षो मे वह मालिक मकान से छत बदलवाने के लिए कह रहा है मगर उसके कानो पर जू तक नही रेंगती। हर बार किराया बढाने की बात कह कर वह टरका देता है। नगर से सटा होने के कारण कस्बे मे भी मकानो की किल्लत होती जा रही है। लगता है यह छत उनकी जानें लेकर ही छोडेगी। उसका जी चाहा कि वह अगले ही दिन मकान बदल ले। आखिर अस्लम मिया भी तो उसी का ही सहयोगी है। उसका भी तो इतना ही वेतन है, जितना उसका है। यदि वह अच्छे मकान मे रह सकता है, तो वह क्या नहीं रह सकता ? पिछले सप्ताह जब वह उसे मिलने गया था तो अस्लम ने बडी शान से कहा था—भाई, घर छोटा है मगर रोशना इसे साफ-सुथरा रखने मे भी कमाल ही करती है। उसे महसूस हुआ था कि वाकई रोशना भाभी जितना सजधज कर स्वय रहती है वैसा ही साफ मकान को भी रखती है। उसके अचन कुर्ते और गरारे पर अगर चमक है तो कमरे की दीवारो [illegible] पर नजरें जमाये तो नहनजर

वह उलझता गया। मकान बदलना भी उसका उपाय नहीं है। रसोई में से इला ने पुकार कर कहा—मैं कहती हूं आप भी यहीं आ जाइए, कमरे की छत बहुत कमजोर है, परन्तु उसने सुनी अनसुनी कर दी। एक बार छत की ओर देखा और फिर लिखने बैठ गया। उसकी नजरें कागज पर टिकी हुई थीं किन्तु मस्तिष्क बिल्कुल बिखरा हुआ था। वह उधेड़बुन में लगा रहा था—मकान कैसे बदला जा सकता है? कौन है जो उसे भाग-दौड़ और भी भेज दे? मां मैके गई है ताकि अपने भैया से इलाज के लिये मदद ले सके। वह बेटे को विलायत का पुत्र समझती है। उसने कई बार कहा है कि पिता जी के देहांत के बाद उसने भाई साहिब को खूब लगन से पढ़ाया था। उसका ख्याल था कि पढ़-लिख कर बेटा अच्छी नौकरी पा लेगा। उसकी सेवा करेगा और छोटे-छोटे बहन-भाई को पढ़ाएगा। अभी तो मां ने मकान तक बेच कर उसे ऊंची शिक्षा के लिये विदेश भेज दिया था। उसे क्या खबर थी कि वह विदेश में जाकर विदेशी ही हो जायेगा? भाई साहिब ने वहीं विवाह कर लिया और वहीं के हो रहे। कहती है, सोचा था मकान का क्या है, राजू पढ़-लिख कर लौटेगा तो ऐसे कई मकान बनवा लेगा। वह अभी तक उसके लौटने के स्वप्न देखती है मगर किसने लौटना है? जो पत्र तक नहीं लिखता वह आयेगा क्या? वह सोचता रहा।

बड़ी भोली है मां। उसे कमला पर भी बहुत गर्व था—तुम इसे बहन नहीं भाई समझो। तुम्हारे दुख-सुख में साथ न दे तो कहना? वह उसे प्रायः यही कहती थी। उसको स्वयं भी बहन से बहुत आशा थी। उसे बी० ए० तक पढ़ाने-लिखाने वाली आखिर वही तो थी। परन्तु जाने क्या हुआ कि इधर उसे नौकरी मिली और उधर कमला ने अपना हाथ पीछे खींच लिया—लो भैया, अब तुम्हें नौकरी मिल गई है, कमाओ और खाओ और मां की सेवा करो। उसने एक बार कहा था। उसके पश्चात् उसके दर्शन ही नहीं हुए। उसकी सहपाठिनी नर्स कहती है कि वह अमरीका चली गई है। उसे वहां अच्छी नौकरी मिल गई है। सुना जाता है कि गत वर्ष जुलाई में ही वह ब्याह कर गई थी। ये रिश्ते-नाते सब ढोंग हैं, बनावट है वह होठों ही होठों में बुदबुदा कर रह गया।

छत अनायास टपकने लगी—उफ! क्यामत आकर रहेगी, वह झल्ला उठा। उसके माथे पर सलवटें पड़ गईं। वह कुछ नहीं लिख सकता। समस्याओं की अनगिनत लकीरें जो उसके चारों ओर खड़ी हैं, उसके भावों को सड़ती हुई लाशों में बदल देंगी।

—धिक्कार है ऐसे जीवन पर, वह अपने आप पर बरस पड़ा। सहसा इला ने

प्रवेश किया—लाख जल्दी करने पर भी पूरी भीग गई हू, माथे से पानी की बूंदें पोछते हुए वह बोली। उसे और भी शिकायत थी—बरसात मे तो मेकअप करना ही नही चाहिए। लिपस्टिक होठो से लेकर कानो तक छितर गई है। धोती और ब्लाउज शरीर के साथ चिपक गये है। वह सुनता रहा, मगर बोला कुछ नही। उसकी खामोशी इला को और भी खली। वह चिढ़ गई—

—मैंने तभी कह दिया था कि सस्ती लिपस्टिक मे इतनी चिकनाहट कहा कि वह टिक सके? वह तो छितरायेगी ही। वह फुफकारती हुई उसके पास से गुजर गई। उसकी नुचडती हुई धोती से टपकती बूदें इधर-उधर फैल गई। कथाकार पर भी जलकण। उसकी नुचडती हुई धोती से टपकती बूदे इधर-उधर फैल गई। कथाकार के कागज पर भी जलकण लमड गये। वह खीझ उठा और उसने कागज मरोड कर कमरे से बाहर पटक दिया।—लो, इसे भी साथ ही लेती जाओ, वह चिल्लाता और मुह बसूरता हुआ छत पर चला गया ताकि वहा पडी दराड़ो को किसी प्रकार बन्द कर सके।

०००

सपना

० अशोक पन्त

०००

···और गरीबी ही तो उसकी हम उम्र सफर थी। वह सेवा योजन कार्यालय मे कनिष्ठ लिपिक के पद पर था। समय पर कार्यालय पहुचना और पाचबजे बाद सारा कार्य निपटाकर घर जाना उसकी नियति बन चुकी थी। वह अक्सर सोचा करता था कि शायद पूरा खानदान बाबूगिरी करते-करते दम तोड देगा। उसका बाप क्लर्क था, चाचा, ताऊ दोनों क्लर्क और मामा जी तो क्लर्की घिसते-घिसते भरी जवानी मे ही दम तोड चुके थे और अब उनकी कच्ची गृहस्थी का अभिशाप हो रहा वह···इस क्लर्की मे। उसे लगता था कदाचित् उसकी सन्तान को भी यही क्लर्की करनी पडेगी।

बाप का साया उठते समय उसने प्रथम श्रेणी मे इन्टर साइन्स से पास कर लिया था और पिलानी मे बी० ए० के पचवर्षीय कोर्स के लिए उसका सलेक्शन हो चुका था, पर ठीक उन वक्त मे पिताजी का हार्ट फेल हो गया···और उसके सारे अरमान लट्टू के समान फ्यूज हो गये। परिस्थितियो के दुष्चक्र मे फसा वह क्लर्की मे अपने जीवन के दस वर्ष होम चुका था। अब उसकी उम्र अट्ठाईस के आस-पास पहुच चुकी थी, लेकिन आखें गड्ढो मे धस गई थी और गाल लटक चले थे। सिर पर पतझड़ का बसेरा था। यो ही वह बेमन से दिनो को घसीटे चले जा रहा था, दरअसल उसकी सारी शक्ति रुई के तार की तरह निचुड चुकी थी और उसका जीवन अपनी तथा मामा जी की कच्ची गृहस्थी को ढोते-ढोते हारे हुए जुआरी की तरह हो गया था।

उसका बॉस उसे बहुत चाहता था। वह कार्यालय का अति विश्वसनीय बाबू था। यो वह कनिष्ठ लिपिक था, पर बॉस ने उसे कान्फीडेन्सियल विभाग का सर्वेसर्वा बना रखा था। इसी कारण बड़ा बाबू उससे कुढ़ता था और उसे नीचा दिखाने के हर सम्भव यत्नो की ताक में रहता था।

आज तो उसे विशेष रूप से ठीक समय पर दफ्तर पहुचना था। उसने घड़ी को और उचटती निगाहो से देखा—साढ़े नौ बजने वाले थे, उसे एकबारगी पत्नी पर झुझल आई···आज तो देर महज उसी के कारण हो गई थी। पतीली मे साग छोककर वह पड़ोसिन के यहां चली गई थी और अब साढ़े नौ बज चुके थे, वह लौटकर नहीं आई थी। पौने दस बजे वह लौट कर आई, तब कहीं जाकर उसे भोजन मिला। उसके जी में आया उसे फटकारे, पर चुप रह गया। उसकी पत्नी आशा सम्पन्न परिवार की लड़की थी। दोनों ने प्रेम-विवाह किया था। प्रारम्भ मे तो वह उसकी सभी

फरमाइशों को पूरा करने का हर संभव यत्न करता था, पर आत्मवंचना की यह भावना अधिक दिनों तक न चल पाई, आशा स्वयं एक पढ़ी-लिखी युवती थी, फलस्वरूप उसने परिस्थितियों से समझौता कर लिया और अपनी बढ़ती हुई चादर को समेट लिया।

जब तक वह तैयार हुआ तब तक घड़ी ने सवा दस बजा दिए थे और अब उसका मन आशा से छिटक कर आफिस के कागजों की ओर घूम गया। उसे उन कागजों की याद आ रही थी, जिन पर आवश्यक टिप्पणी देकर—उसे बॉस के सामने पेश करना था। जरूरी कागजों के ऊपर रेंगता हुआ उसका मन एकाएक ठेकेदार गजराज सिंह पर जा टिका। वह पिछले कई दिनों से टेन्डर की मंजूरी के लिए उसके इर्द-गिर्द बन्दरिया के बच्चे की तरह चिपकने का प्रयास कर रहा था। वह इस बात को अच्छी प्रकार जानता था, कि उसका बॉस उसकी किसी भी बात को टालता ही नहीं है और आंख मूंद कर कागजों पर दस्तखत कर देता है। उसे यह भी मालूम था, कि ठेकेदार गजराज सिंह के टेंडर की रेट सबसे कम थी। एकबारगी तो इसके दिमाग में यह बात कौंध उठी, क्यों नहीं ठेकेदार गजराजसिंह के टेन्डर को मंजूरी दिलवाकर अच्छी-खासी मोटी रकम वसूल कर ली जाय। यह देखो—अपना बड़ा बाबू शानदार दो मंजिली कोठी का मालिक बना हुआ है। घर पर सोफा, फ्रिज, कीमती फर्नीचर, कालीन, टी० वी० सेट आदि सभी कुछ है—वह भी तो महज टेन्डरों की मंजूरी करवा कर मालामाल हुआ है। रिपोर्ट हुई भी तो क्या हुआ, दो साल ससपेन्ड रहा, फिर केस जीतकर बहाल हो गया है। अपने शहर से दूसरे शहर में ट्रान्सफर हो गया और भी अच्छा हुआ, अब तो यहीं बस गया है।

पुन उसे अपनी स्थिति का ध्यान हो आया, कि आज तक उसने कभी भी रिश्वत नहीं ली है, फिर आज ऐसा क्यों ? और वह फिर अपनी ईमानदारी को टटोलने लगा······उसने एक ही झटके में इस कमीने विचार को दिमाग से निकाल बाहर किया। नहीं···नहीं···नहीं···वह हरगिज ऐसा नहीं करेगा···उसका दफ्तर आ चुका था, साइकिल स्टेंड पर साइकिल खड़ी कर वह दफ्तर की ओर बढ़ा ही था, कि चपरासी ने बताया, कि साहब का फोन आपके नाम आया हुआ है, कि वे बारह बजे तक आ पाएंगे, उसने कलाई में बंधी घड़ी की ओर देखा, आश्वस्त हुआ, अभी तो ठीक ग्यारह बजे थे।

एक ईमानदार क्लर्क के जीवन में वे क्षण अतीव आनन्द के होते है, जब वह अपने टेबुल पर रखे हुए कागजों को नित्य प्रति आवश्यकतानुसार डिस्पोजआफ कर देता है। उसे भी आज इसी प्रकार की आनन्दानुभूति हो रही थी।

सायंकाल का समय था। छ के आसपास का वक्त रहा होगा। वह अपने मकान की छत पर बैठा हुआ प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। वह आज पूर्व निर्धारित सभी आवश्यक कागजों का निपटारा कर चुका था। यह सोचकर वह और भी अधिक खुश था, कि बॉस ने उसे बधाई दी थी। वह इन विचारों में डूबा हुआ था, कि नीचे से

अब न पड़ता ने खरा करेंगे'—एक अधिकृत-सा उत्तर मिला। तिवारी बाबू भी कुछ नहीं कहा था और अब इस बाबू ने यह तारीख तक इसका कार्यालय का नहीं का काम पूरा करके वहाँ दिन काटा तो ऐसे ही इसका नाम काट दिया जाएगा। इसके बहुत को फीस का बाबू ने अभी तक नहीं बन पाई है—यह देखा मुख्याध्यापिका का बेचारगी-सा, बड़े हुए आशा ने वह पत्र अमर को थमा दिया।

'हाँ, पापा कल मना गए थे रोता रहा रहा क्या तुम्हारे पापा के पास फीस भरने के पैसे नहीं हैं'—सुनीत के यह कहने पर उसे अपनी हालत पर रोना-सा आ गया। विवशता ने उसे रुआँसा-सा बना दिया। कुछ क्षण निरुद्देश्य शून्य को ताकने के बाद वह बाहर की ओर चल दिया। थोड़ी देर बाद लौटकर आया, जैसे-तैसे दो-एक रोटी खाई और छत पर चला आया, कि तभी खट-खट की आवाज आई। उसने छत से नीचे झाँका तो गलियारे के दरवाजे पर ठेकेदार गजराजसिंह को खड़ा पाया।

'अमर बाबू जी।'

'आइए'—यह कहता हुआ वह छत से नीचे उतर आया और दरवाजे खोल दिए। दोनों आँगन में आ गए और मरियल-सी तार-तार हुई चारपाई के ऊपर बैठ गए।

'कहिए जनाब, कैसे तकलीफ की इस गरीबखाने में आने की'—अमर बाबू बोले।

'बस यूँ ही चला आया था आपके दर्शनों के लिए'—ठेकेदार गजराजसिंह ने बात को छिपाते हुए कहा।

'लेकिन हम लोग तो दफ्तर में मिल चुके थे।'

'हाँ, फिर क्या घर में नहीं मिल सकते हैं क्या?'

'नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है? मैं आपकी क्या खातिर कर सकता हूं,' अमर

बाबू ने झेंपते हुए कहा।

'बाबू जी, आपसे क्या छिपा हुआ है, एक अर्ज करने आया था, इसे भगवान के नाम पर अपने बच्चों के लिए रख लीजिए'—यह कहते हुए ठेकेदार ने एक बड़ा-सा बन्द लिफाफा अमर बाबू के हाथों में दे दिया। अमर बाबू ने लिफाफा खोलकर देखा था, उसमें सौ-सौ के सत्तर नोट थे।

'नहीं···नहीं···नहीं···मुझे इन रुपयों की जरूरत नहीं है।'

'जरूरत न सही, इसे मेरी तुच्छ भेंट समझ कर ही रख लीजिए।'

'नहीं···यह ठीक नहीं है, रिश्वत का मैं जन्मजात शत्रु हूं।' 'रिश्वत लेने और देने वाले का नाश हो—बाबू जी ? क्या आपने कभी मुझे इसके लिए आज तक मजबूर किया ? मुझे अपना दोस्त समझ कर ही इन्हें अमानत के बतौर फिलहाल अपने पास रख लीजिए ?' यह कहकर उसने बाबू जी की ओर देखा, कि उसकी बात कहां तक अपना प्रभाव छोड़ती है।

'लेकिन यह तो सरासर घूस है, कल यदि आपके टेण्डर स्वीकार न किये गए, तो क्या आप मुझे गाली न देंगे ? मैं शायद कल ही बड़े घर के सींखचों के उस पार दिखाई दूं'—उसने भी ठेकेदार को आजमाते हुए कहा।

'राम—राम कैसी बातें करते हो बाबू जी ? क्या जेल जाने के लिए तुम ही रह गए ? तुम मुझे कसम दिलवा दो, मैं अपने मुंह से कभी इस मामले में उफ् कर जाऊं तो असल ठाकुर की औलाद नहीं'—यह कहते हुए ,ठेकेदार गजराजसिंह लपकते हुए बाहर हो गए। उधर अमर बाबू नहीं···नहीं···नहीं कहते रह गए।···

रात्रि को स्वप्न में बाबू जी को अपनी आंखों के आगे सौ-सौ के सत्तर नोट बेहूदे ढंग से नाचते हुए दिखाई पड़े और वह उनके उपयोग की सम्भावनाओं में डूबते-उतरते रहे। स्वप्न में बाबू जी ने देखा, कि कोई उसके पास से ही उसकी पत्नी और बच्चों को छीनकर अज्ञात दिशा की ओर भागे चला जा रहा है।···फिर पत्नी और उसके बच्चे एकाएक उसकी आंखों से ओझल हो जाते हैं। वह उनकी तलाश में भूखा-प्यासा बीहड़ रेगिस्तान में जा पहुंचा है। कहीं कोई आवाज नहीं, चारों ओर रेत ही रेत और उसकी आवाज गुमनाम सन्नाटे को चीरती हुई कसकोल गुदाई की तरह उसी के पास वापस लौट आती है।

आशा···आशा···सुनीता···सुनीता हरीश कहते-कहते उसका गला रुंध आता है। उसे जहां-तहां—सौ-सौ के नोट बेतरतीब ढंग से बिखरे हुए दीख पड़ते हैं। दूर एक टीले के पास से उसे सुनीता के रोने की आवाज सुनवाई पड़ती है, वह बेतहाशा उसी ओर दौड़ने लगता है, कि एक तूफानी हवा का झोंका···और फिर नोट सर्प की तरह लपलपाते हुए उसकी ओर भागे चले आते हैं। उसे लगता है मानों नोटों के मैदान की सतह थोथी है, सीमातीत बीहड़ रेगिस्तान में नोट सड़ी-गली फाइल सरीखे हैं, जिन्हें बेकार समझकर फाड़कर फेंक दिया,गया है। उसे अपने इर्द-गिर्द नोटों का दलदल दीख पड़ता है और वह इस दल-दल में से जितना ही अधिक निकलने की कोशिश करता है, उतना ही अधिक धसता चला जाता है।

०००

स्याह पड़ता चेहरा

• रामानंद राठी

•••

[illegible] में बैठे हैं।
उनका स [illegible] कर्मचारी पर नजर रख सकें। केबिन के सामने की दीवार कांच की बनी है और मि. दास की उपस्थिति का पता बाहर अंदर रखी खाली चेयर को देखकर आसानी से लगा सकते हैं।

हम ज्योंही सीढ़िया चढ़कर आफिस में दाखिल हुए मिस्टर दास ने हमें देख लिया और अति व्यस्तता प्रदर्शित करते हुए पुनः फाइलों में खो गये थे। ऑफिस की दीवारों में जगह-जगह कूलर लगे हुए थे और बाहर की तेज धूप में यहां आने पर हमें काफी सुकून मिल रहा था। हम फाइलों से दबी भड़कीली मेजों के बीच गुजरते हुए मि. दास के केबिन तक पहुंच गये।

केबिन के दरवाजे को धक्का देकर पहले मुरारी घुसा फिर मैं। मिस्टर दास हमें बैठने के लिए कहकर पुनः फाइलों में खो गये।

मुझे अब पता लगा कि मिस्टर दास के केबिन की बाकी दीवारें इतनी अभेद्य और पुख्ता है—बारीक कंक्रीट की बनी, ठोस। दीवारों पर तत्कालीन मुख्यमंत्री और कंपनी के दिवंगत मालिक के फोटो साथ-साथ लगे थे। मि. दास हमारी उपेक्षा करते हुए निर्विकार भाव से फाइलों में डूबे हुए थे। उनकी भारी बाहों पर उगे बाल कूलर की हवा में रीछ के बालों की तरह हिल रहे थे। मैंने मन ही मन तौला, मि. दास का व्यक्तित्व कोई खास प्रभावशाली नहीं है, उन पर हावी हुआ जा सकता है। मुरारी यहां पहले भी दो बार आ चुका था। इस बार हम अंतिम और निर्णायक मुलाकात करने आये थे।

मुरारी और मैं बहुत व्यवस्थित ढंग से खुद को खेलते हैं। महीने के आरंभ में हम लाटरियां डालकर दस बड़ी कंपनियों का चुनाव कर लेते हैं जो आसानी से चंदा दे सकें। पांच कंपनियां मुरारी ले लेता है, पांच मैं। इन कंपनियों के मालिकों के पास हम दो बार अलग-अलग अपनी संस्था के उद्देश्य स्पष्ट करने जाते हैं और उन्हें इस पुनीत यज्ञ में यथासंभव आर्थिक सहयोग देने के लिए प्रेरित करते हैं। तीसरी और अन्तिम बार जब पैसा आने की पूरी संभावना रहती है, हम साथ-साथ दसों कंपनियों का दौरा करते हैं। दो आदमियों के साथ रहने से कंपनी के मालिक पर मनोवैज्ञानिक असर

भी पड़ता है और प्राप्त हुई चंदे की राशि को लेकर हमारे बीच अविश्वास पैदा होने की गुंजाइश भी नहीं रहती।

'मि. दास आपके कहे अनुसार मैं आज फिर हाजिर हुआ हूं' मुरारी बोला, 'ये मेरे मित्र हैं ब्रह्मस्वरूप जी, उस लायब्रेरी का काम आजकल ये ही देख रहे हैं' मुरारी को सारी बातें खुद ही करनी पड़ रही थी। यह मुरारी के हिस्से की कपनी थी और वह पहले किस पुनीत कार्य हेतु यहां सहायता लेने आया था, वही जानता था।

'मि० दास हम चाहते हैं किताबों की खरीद जितनी जल्दी हो जाये अच्छा है। इसी पन्द्रह अगस्त को हम लायब्रेरी का उद्घाटन कर देना चाहते हैं' मैंने सफाई से बात के सूत्र को पकड़ते हुए कहा। मेरी आवाज मे सधा हुआ आत्मविश्वास था।

मि० दास बिना कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किए खामोश बैठे रहे। उनके पीछे काच का बड़ा-सा अक्वारियम रखा था जिसमे नन्ही-नन्ही मछलियां खेल रही थीं। अक्वारियम के पेंदे में पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े डालकर चट्टानों का आभास पैदा किया गया था और पत्थरों के बीच फंसी प्लास्टिक की एक पतली नली में बुदबुदे ऊपर उठ रहे थे।

'मि० दास, आप कुछ बोले नहीं' मुरारी की आवाज में वही तनाव बरकरार था।

'मुझे दुःख है मि० मुरारी हमारे मैनेजिंग डायरेक्टर आज भी बाहर गये हुए हैं और उनसे बात किये बिना मैं आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता' मि० दास ने कलमदान से लाल कलम निकाली और फाइल के पीछे अंग्रेजी में कोई नोट लिखने लगे।

निर्णय के क्षण लगातार हमारे हाथ में फिसलते जा रहे थे। लेकिन हमें आज ही अन्तिम निर्णय चाहिये दास साहब—हां या नहीं। हमें किताबों की खरीद जल्दी करनी है, हम आपके डायरेक्टर का और इंतजार नहीं कर सकते' मैंने मुरारी का पैर दबाया कि अब वह बोले। मुरारी की कद-काठी मुझसे मजबूत थी और उसकी आवाज में भर्राहट का सा रौब था। यह वह वक्त था जब मुरारी को अधिक से अधिक बोलना चाहिए था। जब अंग्रेजी में बोलकर प्रभावित करने का मौका आता था तब मैं अधिक बोलता था—मुरारी बहुत कम अंग्रेजी जानता था और उसका उच्चारण हास्यास्पद था।

मि० दास लिखना छोड़कर सोच में पड़ गये थे। उन्होंने फाइलों को छोर से एक तरफ सरकाया और सिगरेट सुलगा ली।

मैंने देखा, सुनहरी मछलियां गोता खाकर चट्टानों के पीछे जा छिपी हैं। व पत्थरों के पीछे से हमें देख रही थी और हमारी ताकत का अंदाज लगा रही थी।

'दरअसल स्टूडेंट साहब हमने भी की है। मैं भी यूनिवर्सिटी में सेक्रेटरी रहा हूं लेकिन आपके बात करने का तरीका, माफ कीजिये मुझे पसंद नहीं आया' मि० दास बोले।

'आप हमें समझ नहीं पा रहे हैं दास साहब, हम आप जैसे बुद्धिजीवियों के पास नहीं जायेंगे तो और कहां जायेंगे ? युवा वर्ग को सृजनात्मक गतिविधियों की तरफ मोड़ने का हमने संकल्प लिया है—हमारे उत्साह पर पानी मत फेरिये' मेरी आवाज में नर्मी और रौब एक साथ थे। चंदा मांगने के लंबे अनुभव ने हमें इस तरह की आवाज निकालने का अभ्यस्त बना दिया था।

मुझे एकाएक उस औरत की याद आ गई जो सड़क पर अपने नवजात शिशु को नंगा लिटाकर भीख मांगती थी और जिसके लम्बे नाखून 'लेप्रोसी' के कारण गल चुके थे। हमारे पास सृजनात्मकता का संकल्प था और हमने उसे मि० दास की मेज पर लिटा दिया था।

हमारी बात को दरकिनार करते हुए मि० दास मेज की दराज में कुछ खोजने लगे।

'दास साहब आपको शायद पता नहीं है, इस लायब्रेरी का उद्घाटन खुद मुख्यमंत्री कर रहे हैं। वे इस बात से खुश हैं कि युवाशक्ति अंततः रचनात्मकता की तरफ मुड़ रही है' मुरारी ने कहा और कंधे पर टंगे झोले से उसने रसीद बुक बाहर निकाल ली। इस नयी सूचना से सहमकर मि० दास दुबारा सोच में पड़ गये थे और हमारे लिये यह बहुत नाजुक क्षण थे। इन क्षणों को हम किस त्वरा से अपनी तरफ मोड़ सकते थे, इसी पर हमारे धंधे की सफलता निर्भर करती थी। उन्होंने मेज पर पड़े पैकेट से नयी सिगरेट निकाल कर सुलगा ली और रसीद बुक के पन्ने उलट कर देय रकम का अनुमान लगाने लगे।

इसी बीच मुरारी ने एक और चमत्कार दिखाया। मेज पर रखे कांच के पेपरवेट को उसने हाथ के एक अनजान झटके से फर्श पर गिरा दिया। पेपरवेट के फर्श पर गिरते ही मि० दास की बांहों के बाल खड़े हो गये थे, वे चंदे की रकम लिखते-लिखते एकाएक ठिठक गये।

'सहायता राशि आप सोच समझ कर लिखिए मि० दास, आप जानते हैं कि आपकी कंपनी विश्वविद्यालय के बिल्कुल सामने ही है' मैंने अंग्रेजी में कहा। धमकियां यदि अंग्रेजी में दी जायें तो उनका मंतव्य अधिक सफलतापूर्वक उपयुक्त पात्र तक पहुंचता है और वे उतनी अशिष्ट भी नहीं लगतीं।

'वैल! वे बोले और उन्होंने पेन की नोक को रसीद बुक से हटा लिया, 'आप समझते हैं आप मुझसे धमकाकर पैसे ले लेंगे। यह आप अच्छी तरह जान लीजिये मैं धमकियों में आने वाला नहीं हूं।'

चेंबर की खिड़की पर धूप आ गयी थी और परदे के हिलते ही धूप का एक चमकदार टुकड़ा अक्वारियम की छत से टकराता था। धूप की तेज रोशनी से मछलियां एकाएक हड़बड़ा गई थीं।

'यह धमकी नहीं हकीकत है दास साहब! लाईये रसीद बुक—हम जा रहे हैं' मुरारी अचानक खड़ा हो गया।

मुरारी के इस कदम से मैं विचलित हो उठा। उसे इस वक्त थोड़ा नर्म पड़ना चाहिये था, फिर भी मुरारी की सूझ-बूझ पर मुझे पूरा भरोसा था। मैं खामोश बैठा रहा।

'आप अभद्रता से पेश आ रहे हैं श्रीमान् !' मि० दास के चेहरे पर आतंरिक भय और घृणा के भाव थे 'आप जो चाहे कर लीजिये, मैं अब एक पैसा भी नहीं दूंगा' वे फाइल के पन्ने उलटने लगे।

'लेकिन पैसे आप जरूर देंगे, हम एक क्रियेटिव मिशन को लेकर चले हैं और अपने इरादों को पूरा करना हम बखूबी जानते हैं' मुरारी के शब्द पत्थर की तरह सूखे व सख्त थे और उनके पीछे पके हुए संगीन इरादों की अनुगूंज थी।

चैंबर में एक अजीब-सा तनाव व्याप्त हो गया था। मेज के एक तरफ नन्ही मछलियां व दास साहब थे और दूसरी तरफ मैं और मुरारी। ये हमारे लिये घोर विपन्नता और भूख के दिन थे जिन्हें हम किसी तरह काट रहे थे। शुरू में ऐसे मौकों पर हमें जलील होने का अहसास होता था। किन्तु अब सारे अहसास मर चुके थे'' हम बाह्य और भीतरी, दोनों दुनियाओं को खो चुके थे।

'मुरारी ! आप अपनी हद से बाहर जा रहे है, आप खुद यहां से बाहर निकल जाइये वरना मैं पुलिस को फोन करता हूं' मि० दास सचमुच फोन के नंबर घुमाने लगे।

सारी स्थिति अचानक उलट-पुलट हो गयी थी। मुरारी की जरा-सी भूल ने बना बनाया खेल बिगाड़ दिया था। हालांकि मुरारी का भी इसमें अधिक दोष नहीं था, उसने जुआ खेला था—चंदे की रकम धमकी से बढ़ भी सकती थी लेकिन अब हवा का रुख मुड़ चुका था। उल्टे पांव उसी जगह लौटना असंभव था।

'दास साहब आप नहीं जानते पुलिस की धमकी आप किसे दे रहे हैं ? कल तक आपकी ये कंपनी जलकर खाक होगी और आप बाहर सड़क पर'''' मुरारी की आंखों में आग धधक रही थी। यह आग उसके भीतर चंदा न बटोर पाने या इज्जत उतर जाने की आत्मग्लानि से उतनी नहीं धधकी थी जितनी पिछले दो वक्त भोजन न जुटा पाने की विवशता से। उसमें गजब का दैहिक आत्मविश्वास था—भूखे पेट वह कंपनी को जलाने की धमकियां दे रहा था !

झगड़े की आवाज सुनकर कंपनी के चौकीदार वहां भाग आये थे। और उनमें से एक मुरारी का हाथ पकड़कर दरवाजे के बाहर घसीटने लगा था।

'दास साहब आप अपने चौकीदार को रोकिए, दिस इज नो मैनर टू ट्रीट ए जेंटिलमैन' मैंने सामने रखी मेज को थपथपाकर कहा।

'गेट-आउट !' मि० दास बिना मेरी ओर ध्यान दिए चिल्लाए। उनका चेहरा तमतमाकर लाल हो आया था और उनकी उंगलियां स्नायुओं पर से नियंत्रण खो देने के कारण लगातार कांप रही थी।

लड़ने से अब कोई फायदा नहीं था। पुलिस को फोन हो चुका था और हम

जानते थे ठंडी खोह में लेटे इस रीछ का हम कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। हम मेजों को पार कर फुर्ती से जीने की सीढ़ियां उतरने लगे।

'इस पिल्ले को बता जरूर देना, इसे कल चैंबर से बाहर घसीट कर नहीं मारा तो···' मुरारी का गुस्सा अभी भी शांत नहीं हुआ था और वह ऊंची आवाज में सबको सुनाकर गालियां दिए जा रहा था।

हम जीना उतर कर खुली सड़क पर आ गये।

बाहर बहुत तेज व नुकीली धूप थी और भूख के कारण हमारे सिर चकराने लगे थे। सामने टूटे पाइपों के ढेर पर एक बच्चा खों-खों करके उल्टियां कर रहा था। मुरारी ने कुर्ते की जेब से मुसी हुई सिगरेट निकाली और उसे सुलगा कर धीमे-धीमे कश खींचने लगा। मैंने आहिस्ता से मुरारी के कंधे पर हाथ धर दिया। सुन्न पड़ी आंतरिक संवेदनाओं को अब और अधिक नहीं घसीटा जा सकता था—मैंने देखा मुरारी का रोष से तमतमाया चेहरा काला पड़ता जा रहा है।

०००

मेरा गांव कहां है ?

० हेतु भारद्वाज

० ० ०

मैं जैसे-तैसे मोटर की भीड़ को चीरता हुआ नीचे उतरा—पसीने और धूल में लथ-पथ। मेरे गाव की ओर चौबीस घंटे में एक ही तो बस आती है। यही एक बस तब आती थी जब देश आजाद नही था। सड़क बनी नही—हां कस्बे से लेकर मेरे गाव तक कंकड़ की सड़क जरूर बन गयी है, पर उससे आगे वही रेत के टीले हैं। इन टीलों में सरकार तो अपनी बस क्यों चलाए ? यही एक प्राइवेट मोटर है जो इस उजाड़ अंचल को कस्बे से जोड़ती है इसलिए यह मोटर रोजाना ही ठसाठस भरकर आती है, यद्यपि इस मोटर में सफर करना एक भारी यातना से गुजरना होता है तथापि मैं इसमें ही आना पसंद करता हूं। एक तो तांगेवाले को मुंह मांगे दाम देकर गांव तक आने के लिये राजी करना मुश्किल होता है, दूसरे मोटर की यह भीड़भाड़ मुझे अपने गांव की जिन्दगी से जोड़ देती है।

धूल के बगूले उड़ाती मोटर चली गयी। मेरा गाव सड़क से कुल दो फर्लांग रह जाता है। मैंने बैग कंधे पर लटकाया और सड़क से हटकर बरगद के पेड़ के नीचे बनी प्याऊ के पास आ गया। वहां कोई नहीं था, प्याऊ के नाम पर एक झोंपड़ी थी जिसमें आठ-दस घड़े रहते थे और एक टीन का डिब्बा। पास के गांव की एक बुढ़िया यहां पानी पिलाया करती थी। पर आज बुढ़िया भी वहां नहीं थी। मैं जब-जब भी गांव आया, मुझे बुढ़िया के अलावा दो चार आदमी जरूर मिले चिलम पीते और बतियाते। दरअसल इस बरगद के पेड़ का गांव की जिन्दगी में अलग ही महत्त्व रहा है। गांव की अनेक बड़ी-छोटी घटनाओं का साक्षी यह बरगद रहा है, पर लगता है अब लोग इससे भी विमुख होते जा रहे है।

बैग जमीन पर रखकर मैं बरगद की छांव में बैठ गया। बरगद की यह ठंडी छाया आने-जाने वालों का आश्रय रही है। मैंने रूमाल से मुंह पोंछा, बाल झाड़कर उनमें कंघा किया। झोंपड़ी के अन्दर गया तो देखा लगभग सभी घड़े खाली थे। एक में थोड़ा सा पानी था, घड़ों से लग रहा था कि उनमें कई रोज से पानी नहीं भरा गया है। मैंने डिब्बे में पानी उंडेला और मुंह-हाथ धोए। कुछ ताजगी आ गयी। पर प्याऊ की वीरानी देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। हो सकता है बुढ़िया बीमार हो उस बेचारी को गांव वाले लोग उसका प्रतिमाह रुपया इकट्ठा करके दिया करते है, कुछ आने-जाने वालों से भी मिल ही जाता था।

मैं आंगन की एक खाट पर बैठ गया। मैंने जेब से छोटे भाई की चिट्ठी निकाली और फिर पढ़ा, 'आपके भाई जी का देहान्त हो गया। मरते वक्त वे आपको बहुत याद कर रहे थे।' इतना सब उसने तो लिखा था. भाई जी मेरे कुछ भी नहीं थे। वे सारे गांव के भाई जी थे इसलिए मेरे भी भाई जी थे, पर फिर अनेक वर्षों से वे केवल मेरे भाई जी रह गये थे. तो मेरे लिए उनका गुजर जाना कोई अर्थ नहीं रखता किन्तु मुझे लगता है कि उनका गुजरना मेरे लिए ही तो अर्थ रखता है। उनके गुजरने के साथ मेरे लिए तो गांव का अस्तित्व ही समाप्त हो गया—मैं जिस गांव में रचा-बसा था वह गांव शायद भाई जी के साथ चला गया। मैं चिट्ठी को पढ़ता रह गया। छोटे भाई ने लिखा है—'आपके भाई जी!' हां, वे मेरे ही भाई जी थे। उम्र में मुझसे तीस साल बड़े रहे होंगे पर जब से मैंने होश सम्भाला मैंने भाई जी को बहुत करीब पाया। इधर मैं पढ़-लिख गया, बड़ा अफसर हो गया, पर भाई जी के लिए प्रायः 'राधिया' था। मेरा नाम है राधेश्याम. आगे चलकर मैंने अपने नाम के आगे शर्मा लगाना शुरू कर दिया था। बाहर के लोग मुझे या तो आर० एस० के नाम से जानते थे या 'शर्माजी' के नाम से। गांव में भी अधिकांश लोग मुझे शर्माजी कहकर सम्बोधित करते थे। एक भाई जी ही थे जो मुझे बचपन के प्यार भरे नाम से पुकारते थे—'राधिया' मुझे बहुत अच्छा लगता था। पर मैं ही सयाना हो गया हूं, पिता को गुजरे अर्सा हो गया। भाई जी मेरे पिता थे, हम उम्र थे पर उनमें गजब का बचपन था। गांव की सारी उजड्डता तथा फूहड़ता भाई जी में केन्द्रीभूत थी। उनकी पत्नी का देहान्त उनकी भरी जवानी में हो गया था, पर उन्होंने शादी नहीं की उन्होंने अपने दोनों बेटों को मां बनकर पाला। गांव भर के सारे लड़के उनके अपने ही बच्चे थे जिन्हें लेकर वे कबड्डी खेलते, बरगद पर चढ़कर गुलाम लकड़ी खेलते तो कभी सभी को बिठाकर नयी-नयी कहानियां सुनाते। यह उनका जीवनक्रम था। यह नहीं कि भाई जी कोरे बालक थे. वे गांव की हर घटना-दुर्घटना में पूरी तन्मयता के साथ शरीक होते थे।

गांव में किसी का देहान्त हो जाता तो उसके क्रियाकर्म की व्यवस्था में भाई जी सबसे आगे होते। संतप्त परिवार के साथ रोते-धोते तथा उनके सदस्यों को सांत्वना देते। गांव में किसी की भी लड़की की शादी होती, भाई जी इन्तजाम कराने में सबसे अधिक व्यस्त रहते। गांव में वे ही एक ऐसे आदमी थे जिन्हें किसी सार्वजनिक कार्य के अवसर पर बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। इसका कारण यह था कि उनके लिये हर मामला 'अपने गांव का मर्म' होता था। हम कितने लड़के भाई जी के साथ खेले-कूदे, बड़े हुए और जिन्दगी में अपनी-अपनी राह चले गये पर पता नहीं क्यों भाई जी के प्रति मेरी ममता बढ़ती ही गयी है। मैं उनके करीब आता ही चला गया हूं, क्यों? मुझे पता नहीं। गांव के जो युवक पढ़-लिखकर बाहर चले गये वे एक तरह से गांव छोड़कर ही चले गये। पर एक मैं ही ऐसा रहा जो गांव को नहीं छोड़ पाया। मेरी पत्नी अक्सर कहती है, 'ऐसा क्या है गांव में जो आप बार-बार उधर भागते हैं? हमसे तो एक दिन भी नहीं कटता 'वहां।' वह ठीक ही कहती है। मैं खुद खोजने की कोशिश करता हूं—कुछ भी तो नहीं है गांव में

पर जब तब एक टूकन्सी उठती है और मैं गाव की ओर भाग जाता हू। वहां एकाध दिन गुजार कर वापस दिल्ली आ जाता हू। पर आज मुझे लगा कि गाव की यह मेरी अंतिम यात्रा होगी। मेरा छोटा भाई चाहता है कि मेरा गांव आना-जाना बना रहे। वह हर काम मेरी राय से ही करता है। पर मैं जानता हू कि गांव में जो चीज मेरे आकर्षण का बिन्दु है वह छोटे भाई के व्यवहार में नही है। वह आकर्षण भाई जी में है और मुझे बराबर यही लगता है कि मेरे सपनो का गाव भाई जी मे ही जिन्दा था।

होली पर डप लेकर मस्ती से धमाल गाते, नाचते भाई जी और लोगो को होली की फुहडता में सराबोर करते भाई जी। हर मौके पर पूरे गाव को एक इकाई मे बदलने का प्रयास करते भाई जी।

गाव मे परस्पर झगड़ा हो गया है, मारपीट हो गयी है, खून-खराबा हुआ है गाव भर मे पूरा तनाव है। पर अकेले भाई जी हैं कि लोगो को शान्त करने मे लगे हैं, उन्हे थाने कचहरी जाने मे रोकने मे व्यस्त हैं, आपस मे सुलह कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैने देखा कि अधिकाश मौकों पर भाई जी को सफलता मिली।

किसी की शादी है, लोग परस्पर रूठ रहे है पर भाई जी है कि सबको मना लेते है।

सारे गाव को एक की खुशी मे बाध देते है। गाव से कोई बारात जा रही है—भाई जी उसमे जरूर जाएगे। वे पकवान नही खाते, पर बारात मे जरूर जाएँगे। वहा कच्ची रोटिया बनाकर खाएगे। रोटिया भी मिल जाए तो ठीक वर्ना भाई जी भूखे भी खुश हैं। भूख मे भी उनकी मस्ती मे कोई फर्क नही आएगा। गाव का कोई गम हो—भाई जी सबमें आगे हैं मैं देखता हू भाई जी वाली पीढ़ी की यह सामाजिकता गाव से धीरे-धीरे लुप्त हो रही है।

यही नही गाव मे कोई अन्याय की बात हुई तो भाई जी ने उसका डटकर विरोध किया। उन्होंने अन्याय का पक्ष कभी नही लिया। मुझे याद हैं कल्लू जोगी की जमीन को ठाकुर नरपतसिंह ने जबरन दाबने की कोशिश की थी, गाव मे नरपतसिंह का दबदबा था, इसलिए कल्लू जोगी अकेला पड़ गया। पर भाई जी ने उसका साथ दिया। नरपत के आदमी जब कल्लू जोगी के साथ मारपीट करने पहुचे तो भाई जी वहा मौजूद थे। उनके हाथ मे लाठी थी। उन्होंने नरपत के आदमियो को ललकार कर कहा था। 'कल्लू ताई कोई आगली उठाई तो चोक्खो कोनी होसी।' भाई जी के सामने कोई नही आया। मैं तब बहुत छोटा था, उस शाम मैंने भाई जी से पूछा था। "भाई जे वे थानै मारता जणा····" भाई जी ने हँसकर कहा था, 'तू राधिया ई वाता नै इबी कोनी समझ सकै। जठै साच होवै छै बठै ताकत वो भोत होवै छै। अन्याय रो विरोध करणो तो मिनख रो धरम छै। जो अन्याय रो विरोध करैला वैरो कोई कोनी विगाड़ सकै।' तब यह बात मेरी समझ मे वाकई नही आई थी पर शायद यही भाई जी की शक्ति थी।

मैं पढ़-लिखकर ऊचा अफसर हो गया। दिल्ली मे मुझे पहली नियुक्ति मिली थी

जब मेरा नियुक्ति-पत्र आया था गांव भर में सबसे ज्यादा खुशी भाई जी को हुई थी यह ढप बजा-बजाकर गांव भर में नाचते फिरे थे। पिताजी को उन्होंने साथ नचाया था। उन्होंने मुझे गुलाल से रंग दिया था और मुझे घोड़े पर बिठाकर जुलूस निकाला था। भाई जी के लिये मेरा अफसर बनना पूरे गांव की प्रतिष्ठा का मामला था। मुझे विदा करने के लिये वे गांव के बीस-पच्चीस लोगों को लेकर स्टेशन आए थे। मैंने भावुक होकर पूछा था, 'भाई जी आपके लिये दिल्ली से क्या लाऊ?' 'मेरे लिये?' वे रो पड़े थे, 'राधिया तूं गाम री इज्जत बढ़ाई छै, मेरे तो या ई बड़ी चीज छं। पण तूं मेरे तई एक चिलम ले आज्ये।' मुझे हंसी भी आई थी और रोना भी। दिल्ली में अपने पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद जब मैं पहली बार गांव गया था तो उनके लिये सिगार ले गया था। मैंने उन्हें सिगार पीने का तरीका भी बताया था। वे सिगार पीते हुए सारे गाव में घूमते फिरे थे, और 'मेरी प्रशसा करते रहे थे, मैं जब-जब भी गाव गया, भाई जी के लिये कुछ न कुछ लेता गया और उन्होंने मेरी हर भेंट खुशी और स्नेह के साथ स्वीकार की।

उनका घर-बार उनके बेटों ने सम्हाल लिया था और भाई जी बेफिक्र हो गये थे उनकी चिन्ता का विषय तो गाव हुआ करता था। मुझे सदा यह लगा कि भाई जी गाव के पर्याय थे तथा उन्हें खुद से ज्यादा चिन्ता गाव की की रहा करती थी।

पर धीरे-धीरे गाव की चीजें उनके हाथ से निकलने लगी थी। उन्हे लगा था कि गांव के लोग उनकी बात नही मानते, गांव के लोग अब स्वार्थी ज्यादा हो गये हैं, बेईमानी और झूठ का बोलबाला बढ़ रहा है। गाव मे ही क्यो वे स्वए को अपने परिवार तक मे अप्रासगिक मानने लगे थे। उनके पोतों के लिये तो वे बिलकुल ही फालतू थे।

पंचायत के चुनाव थे। सयोगवश मैं भी उन दिनो गाव मे था। भाई जी चाहते थे कि सरपच तथा पचो के चुनाव निर्विरोध हो। पर गाव के महत्वाकाक्षी लोग चुनाव कराने पर आमादा थे। सरपच पद के लिये दो प्रत्याशी थे। भाई जी दोनो को समझाने की भरसक चेष्टा कर रहे थे। वे अपने लिये कुछ नही चाहते थे, पर पूरे गाव को एक सूत्र मे बाध रखने की उनकी तीव्र लालसा थी पर भाई जी के समस्त प्रयत्नो के बावजूद दोनों मे से कोई भी बैठने को राजी नही हुआ। भाई जी आहत हो गये थे। उन्होंने चुनाव में भाग नही लिया था किन्तु उन्हे कोई मनाने भी नही आया था। वे जैसे टूट गये थे। चुनाव में खूब मारपीट हुई थी। मैं जब भाइ जी से मिला तो वे टूटे स्वर मे बोले थे, 'भाया राधिया इब आपणो गाम बरबाद हो जास्सी। गाम री फूट ई ने माटी मे मिला देस्सी' मैंने उन्हे समझाया था, 'भाई जी वक्त बदल रहा है चुनाव वगैरह मे कोई नुकसान नही है' तो वे दुखी होकर बोले थे, 'भाया या तो मैं भी समझू हूं कि समय की चाल नै मैं कोनी बदल सकू, पिण गाम टूट कै बिखर जास्सी। आदमी-आदमी को दुश्मन हो ग्यो छै। या चोखी बात कोनी।' मैंने उनकी बात का उत्तर नही दिया था क्योंकि मैं उनको समझा नही सकता था वे शुद्ध भावना के स्तर पर गांव के रिश्तों को ले रहे थे जबकि वक्त बदल चुका था।

तब से गाव के प्रति उनकी शिकायतें बराबर बढ़ गयी थी। जब भी मैं गांव गया उन्होंने गाव के हालचाल के प्रति गहरी आशका व्यक्त की, 'भाया इब तो घोर कलजुग आ गयी कोई की की बात कोनी मानै। सै स्वार्थी अर बेईमान हो र् या है' उनका शरीर जर्जर हो चला था, पर वे गाव के मामलो को लेकर ही दुखी रहते थे। मैंने उनसे कहा, 'भाई जी इब थाने के मतलब गाम सू मरवा द्यो। थे तो राम राम भजो।

'पण भाया, गाम रो यो हाल तो मेरे से देख्यो कोनी जा' वे कुछ क्षण चुप रहकर धीरे से बोले थे, 'गाम री के बात भाया, इब ता आपण टाबर ई आपणी बात कोनी सुणै' इन शब्दो मे भाई जी के मन का गहरा दर्द उभर आया था और आखों मे आसू छलक आये थे। वे लाठी पर ठोडी रखे गमगीन हुए बैठे रहे थे। वे धुधले चश्मे से जाने क्या देखते रहे थे। (यह चश्मा भी उन्हें मैंने ही लाकर दिया था, जिससे बकोल उनके उन्हे साफ दिखायी देने लगा था।)

मैंने छोटे भाई की चिट्ठी को अनेक बार पढ़ा। मैं बैठा सोचता रहा। मुझे लगा अब मेरा गाव जाना निरर्थक है। तभी तीन-चार लडके वहा आ गये। उनमे से एक ने मुझसे अभिवादन भी किया। सभी मेरे गाव के थे। पर सभी जैसे अपरिचित थे। मैंने उनसे पूछा, 'भाई जी, कँया गुजर गया ?'

मेरा प्रश्न सुनकर लडके थोडी देर मौन रहे। उनमे मे से एक ने कहा, 'कँया गुजरग्या, बापडै नें सास ई कोनी आई,' इस पर सारे लडके हँस पडे। यह सुनकर मैं जैसे सन्न रह गया। वे मेरे ही गाव के लडके थे जो भाई जी की मृत्यु को लतीफे मे उडा रहे थे। मैं उनसे क्या कहता, चुप रहा लड़के हँसते-हँसते चले गये मैं सोचता रहा, मैं जिस गाव मे जा रहा हू क्या वह मेरा गाव है ? वहा जाने से कोई फायदा नहीं। मन हुआ यही से लौट जाऊ, पर बस तो कल आएगी।

मैंने बैग उठाया और गाव की ओर चल दिया। छोटा भाई घर मिला। उसने भाई जी के गुजरने की पूरी दास्तान सुनायी—बूढा शरीर, दमा, दस्त, खासी, रक्तचाप और न जाने क्या-क्या बीमारिया ? पर इलाज की कोई व्यवस्था नही।

'तो क्या इन लोगो ने एक बार भी डाक्टर को नही बुलाया ?' मैंने पूछा।

'नही, वे लोग तो उनके मरने का इन्तजार कर रहे थे। छोटे ने बताया। मैं चुप हो गया।

छोटे ने बात आगे बढ़ायी। 'अब पाच बोरी चीनी और पन्द्रह मन आटा लगा रहे हैं।'

सुनकर मुझे धक्का लगा, 'इस सारे ढोंग की अब क्या जरूरत है ?' मैंने कहा।

'क्यो ? गांव भर का खाये बैठे है ? अब तो मौका है, खिलाएगे कैसे नहीं ? मुझे लगा छोटे का उत्तर काफी क्रूर था। पर मैं चुप रहा।

शाम को मैं भाई जी के नौहरे पर 'बैठने' गया। नौहरे के चौक मे नीम के पेड़ के नीचे एक फटी-सी दरी बिछी थी। वहां कोई नही था। मैं दरी पर बैठ गया। मैं बरा-

घर भाई जी तथा गांव के रिश्तों के बाबत सोच रहा था। तभी भाई जी का बड़ा लड़का बालू आ गया। वह मुझे देखकर खुश हो गया, 'ओ हो सरमा जी, कद आया पे?' 'इवार ई आयो काल मन्ने कागद मिल्यो क भाई जी चलता रिया' मैंने धीरे से कहा। 'तो थे ई खातर आया हो? उसने आश्चर्य से पूछा, 'हां।'

शायद बालू को यह उम्मीद नहीं थी। उसके चेहरे का भाव एकदम बदल गया, 'हा, थारे से तो भाई जी रो घणो प्रेम छो, आखिरी टेम वै थानै भोत याद करता रिया,' बालू उदास हो गया'''इव सरमा जी माया राम री। म्हारे ऊपर तो वैंकी छत्तर छाया थी, वैंके रैंता म्हाने तो वैरो ई कोनी हो क कोई काम कैया हो रियो छै पिण ये या देखो क वैं कोई नै कोई तकलीफ कोनी दी? सुवे उठ्या, हुक्को पानी पियो और बैठ्या-बैठ्या ई बस'''बालू ने अपने लड़के को पुकारा, 'जा रे दो चाय बणवा ल्या।'

'नहीं चाय रहने दो' मैंने प्रतिवाद किया तो बालू हँसकर बोला, 'सरमा जी. जो होग्यो सो तो होग्यो, काम तो सं ई करणा पड़ेगा।' मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। बालू फिर हुलस कर बोला, 'थारे से अरज छै क ये कारज आडे दिन जरूर आज्यो सरमा जी, थोड़ो सो चून लगा रियो हूं। देखो अैया के मौके पै ई मेल मुलाकातिया नै बुलावा जावै है। सो थे जरूर आज्यो।'

मैं समझ नहीं पा रहा था कि बालू अपने बाप के मरने का शोक मना रहा था या अपने मेल मुलाकातियों को बुलाने की खातिर जश्न मना रहा था। मेरी इच्छा हुई जोर से कहूं, 'नहीं, अब मैं गाव नहीं आऊंगा।'

०००

मित्रता

• डॉ० मदन केवलिया

○○○

पत्र पढ़कर उसे लगा जैसे लाटरी का इनाम मिला हो। 'अरे, सुना' उमेश वहीं से चिल्लाया।

हवा जैसे थोड़ी देर के लिये थम गयी। कमला गीले हाथ पल्ले से पोछती हुई रसोईघर से निकल आई। देखा, पति हाथ में कोई पत्र लेकर मुस्करा रहे हैं। काफी समय बाद उसने उनके चेहरे पर लालिमा देखी थी। वह समझी कि शायद इनकी पदोन्नति हो गयी है। कई दिनों से उमेश कह रहे थे कि वे जल्दी ही वरिष्ठ अध्यापक हो जाएंगे—कितने ही सालों से वे सहायक अध्यापक के पद पर थे और अब पदोन्नति की सूची में सबसे ऊपर थे।

'तरक्की हो गयी न ?' गाल को छूती लटें हटाते हुए कमला ने मुसकराकर कहा।

'हां, हो गयी' वह हंसा 'यह देखो सक्सेना का पत्र —मुरैना का एस० पी० हो गया है। डाकुओं से जूझता होगा।'····'जल्दी यहां आयेगा।'

कमला का चेहरा बुझ गया। पता नहीं ये सक्सेना के इतने दीवाने क्यों है ? जब वह इनके साथ टीचर था तो पूरे अठारह घंटे यहीं पड़ा रहता था, कई बार तो रात को भी यहीं सो जाया करता था। कहता था 'भाभीजी, आपके यहां कोई बच्चा नहीं है, मुझे ही गोद ले लो' तब जाने कैसा लगता था। ये तो सचमुच उसको लेकर मरते थे। दोनों के बीच आयु का लम्बा अन्तराल होते हुए भी मित्रों की तरह रहते थे।

'अब आपके सिनेमा, होटल के दिन फिर आ रहे हैं तभी खुश हैं' कमला का बुझा स्वर जैसे कोई जमे तालाब को कंकरी की तरह थोड़ा-सा हिलाकर शांत हो गया। वह अपनी दुनिया में व्यस्त था।'

दूध जलने की तेज गंध ने दोनों को चौंका दिया। अरे—कमला भाग गयी 'चाय के लिए दूध रखा था'

वह चारपाई पर बैठ गया। दिसम्बर की जाती हुई ठंडी धूप उसके निकट आई पर उसका मूड देखकर गायब हो गयी। उसने आंखें बंद कर लीं। बंद पुतलियों पर दरवाजे की छाया अंकित हो गयी—एक के बाद दूसरा चित्र पुतलियों पर अंकित होकर गुजरता रहा···

× × ×

सक्सेना एक तूफान की तरह स्कूल में आया था। प्रथम श्रेणी में इतिहास की परीक्षा पास करते ही वह राजकीय स्कूल में सहायक अध्यापक लग गया था। अपने व्यक्तित्व, विनोदप्रियता और कुशाग्र बुद्धि से वह आते ही स्टाफ व विद्यार्थियों का चहेता बन गया था। हर विषय पर साधिकार बोलने की उसकी क्षमता से सभी प्रभावित थे—

'स्कूल में ऐसा जीनियस !' उमेश ने अपने सहयोगियों से कहा तो वे हँस पड़े।

'आप जैसे लोग तो प्रभावित होंगे ही' व्यंग्य बर्छी की नोक की तरह आरपार हो गया। पर वह आदत के अनुसार चुप रहा।

पता नहीं कैसे इस वार्तालाप का पता सक्सेना को चल गया। वह उसके पास आया 'उमेश जी, आप जानते ही हैं कि दुनिया में सब लोग एक जैसे नहीं होते—आपको मेरे कारण सुनना पड़ा—इसके लिए मैं बहुत शर्मिंदा हूं।'

तब से लेकर आज तक सक्सेना उसके मन के निकटतम रहा है। कमला चाय लेकर आयी तो वह उसी तरह आखें मूंदे चित्र देखते में व्यस्त था।

'छह साल बाद अपना सामान लेने जा रहा होगा।' चाय स्टूल पर रख कर वह मोढ़े पर बैठ गयी—'चार साल बाद तो पत्र आया है और वह भी अपने सम्मान की खातिर। शुरू-शुरू में मसूरी और फिर आबू पर्वत से कैसे स्नेह भरे पत्र आते थे··· बड़ा पद पाकर सभी घमण्डी हो जाते हैं।'

'चुप रहो' उसने अचानक तेवर बदला 'जिस व्यक्ति के बारे में पूरी जानकारी नहीं हो तो बकवास नहीं करनी चाहिये।'

'जानकारी।' कमला की आखों में उपहास, व्यंग्य, खीझ और न जाने क्या-क्या तैरने लगे—'मुझसे ज्यादा जानकारी और किसे होगी? आई० ए० एस० की तैयारी करते-करते ऊब कर वह यहीं तो समय काटने आ जाता था—कितनी बार रात को बारह-बारह बजे उठकर खाना बनाकर उसे खिलाया था। तंगी की हालत में भी कभी जुबान से उफ तक नहीं की थी। आप उसके साथ प्रसन्न रहते थे—मैं इसी को अपना सौभाग्य समझती थी···

'आखिर तुम कहना क्या चाहती हो?' उसके स्वर में खीझ से अधिक दर्द था।

आप उसकी परीक्षा के लिए किताबें जुटाने में कितनी मेहनत करते थे—कभी दिल्ली से, कभी जयपुर से किताबें मंगवाने में भागदौड़ करते रहते थे—जैसे आप खुद ही परीक्षा दे रहे हो····' वह जैसे स्वयं से कह रही हो। 'भई, मैं तो आयु सीमा पार कर गया था, पर मित्र के लिए यह सब करना भी गुनाह था?' उसका आहत स्वर कमला को छू गया।

'मैं यह नहीं कहती—मुझे तो अफसोस इस बात का है कि आपकी भावनाओं को आ मित्र ने कब समझा है? मैंने अपनी बुद्धि के हिसाब से यही समझा है कि वह केवल अपने फायदे को ध्यान में रख कर आपसे मैत्री भाव बढ़ाता रहा—और जब आवश्यकता समाप्त हो गयी तो दूध की मक्खी की तरह आपको···' बकवास बंद करो'

वह उठ खड़ा हुआ। वह अपने भीतर की बेचैनी को व्यक्त करने में असमर्थ था। कमला ने न केवल उसकी दुखती हुई रग को छेड़ दिया था अपितु भीतर जैसे वर्षों से बंद पड़े मन के हारमोनियम को फूंक देकर उसकी गर्द उड़ाकर फिर बजाना शुरू कर दिया था।

वह तेजी से उठा और धमाके से दरवाजा खोलकर बाहर निकल गया। चाय प्याली में से भाप निकलनी बंद हो गयी थी और चाय पर मटमैला आवरण छा गया था।

× × ×

भीतर की आकारहीन बातों को कहना और किसी सांचे में ढालकर कहना बड़ा मुश्किल है—इस बात का अनुभव पार्क के एक कोने से दूसरे कोने में चक्कर काटते हुए बराबर हो रहा था, पर वह उसी प्रकार असहाय हो गया था, जिस प्रकार चलती ट्रेन या बस में डाकुओं के गिरोह को देखकर यात्री हो जाया करते हैं। उसे लगा कि सक्सेना के प्रति कमला का रवैया उचित नहीं है। आखिर सक्सेना ने स्वार्थ कहां दिखाया है? लोग कहा करते थे कि ट्रेनिंग में जाने के बाद वह तुम्हें भूल जाएगा पर उनकी धारणा गलत सिद्ध हुई है। छह वर्ष पूर्व मसूरी में ज्वाइन करते ही उसका पत्र आया था कि आपकी याद बराबर आती रहती है। यहां के कृत्रिम, अभिजात्य एवं स्नाब वातावरण में आपकी निस्वार्थ, निश्छल एवं आत्मीयतापूर्ण बातें ही मेरा सम्बल हैं।' इसी तरह की बातें वह आगे के पत्रों में भी लिखता रहा था—ऊंच नीच का भेद-भाव उसने न तो कभी व्यवहार में प्रकट किया और न पत्रों में। हां, चार वर्ष से कोई पत्र उसने नहीं लिखा—बिजी होगा। आई० पी० एस० की सूची में तीसरा नाम देखकर भी तब उसने यही कहा था—'उमेश जी, आप की सहृदयता एवं मैत्री ही इस पोजीशन का मूल कारण है। आप बार-बार पढ़ने और लग्न से कार्य करने के लिए टोकते नहीं तो मैं सिनेमा और होटल की दुनिया में खोकर गुमनाम हो गया होता।' फिर कमला को देखकर कहा था—'भाभीजी, आपको दो बार मेरे कारण जो जो तकलीफें उठानी पड़ीं, उनसे तो मैं सौ जन्म लेकर उऋण नहीं हो सकता। दिन एकसे नहीं रहते। ट्रेनिंग के बाद पोस्टिंग होते ही आप लोगों को बुलवाऊंगा—तब सम्बी छुट्टी लेनी पड़ेगी।'

उस समय तीनों की आंखें वाष्पित थीं।

पर आज कमला इस कदर नाराज क्यों हो उठी है?

× × ×

वह पार्क के एक कोने में जाकर बांहों का तकिया बनाकर लेट गया। आंखें बंद कर लीं, पर तेजी से दौड़ते हुए बच्चों के पदचापों ने पलकें खोल दीं। धूप अब अलसाई-सी बह रही थी। सिहरन-सी हुई। वह उठकर बेंच के एक कोने में जा बैठा—

'नमस्ते गुरुजी!' कुछ शिष्य शरारत से मुस्कराते हुए उसके पास से गुजर गए। वह केवल सिर ही हिला पाया। सामने बने मंदिरों की सीढ़ियों पर खड़े बच्चों का

[...]खकर एक भीषण अन्तर्वाद उसे मथने लगा। मुन्नी गोद लेकर कमला का कुपित हो जाना उसे स्वाभाविक लगने लगा। सामने की दीवार पर परिवार नियोजन के लिये वाक्यों को देखते ही उसका दम घुटने लगा। लगा वह स्वयं कुण्ठित है, मन की विकृतियां पूरे आडम्बर के साथ उसके भीतर बैठी बाहर निकलने की राह देख रही है। कमला की कुण्ठा और उसका आहत अहं क्या स्वय उसकी देन नहीं है ? मौज-मस्ती के दिन तो उसने गरीबी की जलती सलाखो के बीच रहकर काट दिये हैं। वक्त की चीलों ने हमेशा उसके सुख-व्यजनो पर झपाटे मारे हैं। कब तक बचाकर रखे वह इस स्वार्थपरक ससार की चहार दीवारी मे हँसी की रग-बिरगी बुलबुल को—जिन्हे कैद करने के लिए न जाने कितने सैयाद उतावले हैं ?

× × ×

अधेरा होने पर वह घर पहुचा तो ट्रक से लीक करने वाले डीजल की तरह तनाव चारो ओर फैला था। दरवाजा खोलकर कमला जल्दी से चली गई थी और रजाई ओढ़ कर लेट गई थी। किवाड बद करते समय उसके हाथ कापे और आखो के कोरो पर गीलापन उभर आया। थके कदमो से वह आगन पार कर बरामदे मे आया। एक कमरे मे लाइट जल रही थी और दूसरा कमरा बद था जिसमे सक्सेना का सामान रखा हुआ था। चार सालो मे वह चार-पाच बार ही खोला गया था—सिर्फ उस समय जब सक्सेना ने किसी डिग्री या किसी अन्य कागज की माग की थी। वह वही पड़ी लोहे की कुर्सी पर बैठ गया।

वह दृश्य उसे उस समय दिखाई देता है, जब वह इस बद कमरे के निकट आता है......

सक्सेना बडी जल्दी से आया था और हांफ रहा था। वैसे तो हमेशा हड़बड़ी मे ही कहता था पर उस समय वह कुछ विशेष व्यस्त नजर आया। चेहरे पर पसीने की बूदो को रूमाल से पोछते हुए उसने जो कुछ कहा उसका सार यह था कि उसे ट्रेनिंग के लिए जल्दी मसूरी जाना पडेगा पर वह इतना सामान लेकर कहा जाएगा ? ट्रेनिंग के बाद तो वह ले ही जाएगा, तब उसने कहा था—

'यार क्या बात करते हो, क्या यह तुम्हारा घर नही है ?' फिर मुसकराते हुए कहा था—'इसमे पूछने की क्या बात थी, तुम सामान सीधे यही ले आते तो क्या मै तुम्हें रोक देता ? पुलिस अफसर के सामने मेरी यह हिम्मत ?' और तब दोनो खुलकर हँसे थे।

तब सामान ही नही स्वय सक्सेना भी तीन दिन तक उसी के साथ रहा था। उन दिनो उसने जी भरकर उस पर खर्च किया था—सिनेमा, होटल, पार्क, पिकनिक—न जाने क्या क्या ? यहा तक कि जब सक्सेना ने उसे इशारे से बताया कि उसे मसूरी जा[ने] व वहां के खर्चे के लिये उसे कुछ पैसो की जरूरत है तो उसने अपनी लम्बी नौकरी [...] जोड़े रुपयों मे से पाच सौ उसके हाथ पर रख दिये थे। गद्गद होकर सक्सेना ने य[...] [...] यह अहसान मैं कभी उतार नही पाऊँगा।'

'''कमला अब भी तो मजाक मे कहती है वह बेचारा सही तो कह गया था, कि आपका यह अहसान वह कभी उतार नही पाएगा—अब इस जन्म मे पाच सौ रुपये मिलने की कल्पना ही छोड़ो।' वह ऐसी बातो से बडा क्षुब्ध हो उठता है—दुनिया मे किसने किसका दिल चीर कर देखा है और कर्म करके फल की आकाक्षा करनी नही चाहिये? गीता मे यही तो लिखा है? वह स्वय पर नियत्रण करता हुआ कह भी देता है तो कमला यह कहकर उठ जाती है—'ऐसे निष्काम उपदेश आप जैसे सतो के लिए ही तो है।'

× × ×

भीतर चलेंगे या यहीं बैठकर अपने अछिन्न हृदय को याद करते रहेंगे। वह चौंक उठा—लगा सचमुच ठडी हवा चल रही है और ऐसे मौसम मे बरामदे मे बैठना ठीक नही है। क्या हो गया है उसे? पत्र ने तो चैन हराम कर दिया है। कमबख्त ने आने की तिथि भी तो नही लिखी। पता नही कब तक खुद से लड़ना होगा? कितनी अजीब-सी बात है कि एक अनजान व्यक्ति के लिए उसने अपने दाम्पत्य सुख को नीलाम कर रखा है। पिछले चार साल किस तरह से जूझते-झगड़ते उसने काटे है उसका दिल जानता है।

वह भीतर आकर रजाई खीच कर बैठ गया—कमला यही लेट चुकी थी, अत. बिस्तर गरम था। कुछ नही, बेकार गई यह जिदगी। न घर मे बच्चे की रौनक, न मन मे इच्छाओं की चहलपहल और न पत्नी का उसके प्रति विश्वास—सब कुछ व्यर्थ गया। मेले मे खोई गई चाबी की तरह वह चैन और करार जीवन के मेले मे तलाशता रहा, पर निराशा ही हाथ लगी।

'लो खाना तो खालो' थाली बिस्तर पर रख कर कमला ने भीगी आखो से उसकी ओर देखा, जाने कौन-सी छाया इस घर पर मडरा रही है—इस सक्सेना के पीछे न जाने कितनी बार आसुओ का खजाना हम खाली कर चुके हैं और वह आंखो पर आचल लगाकर कमरे से बाहर निकल गयी।

बाहर पूरी तरह से सन्नाटा था। कमरे मे रखी घड़ी की टिक-टिक के अतिरिक्त कोई और ध्वनि आसपास नहीं थी। कभी-कभी किसी के पदचाप की हल्की सी गूज हवा मे विलीन हो जाती थी। सक्सेना था तो कितनी देर रात को कहकहों की ध्वनिया दीवारो से टकराती रहती थी। कमला यहा नही थी तो रात-रातभर गप्पें चलती थीं, बीमार की बोतलें लेकर आता था और धीरे-धीरे अकेला ही पीता रहता था। उसे पीने से चिढ़ थी पर सक्सेना को मना भी नही कर पाता था।

दीवार पर अपनी परछाई देख उसने आखें मली खाना अभी तक बिस्तर पर पड़ा था। वैसे वह हमेशा बिस्तर पर ही खाना खाया करता था, पर समय पर कमला भी खाती थी पर आज! इससे तो सक्सेना की चिट्ठी नहीं आती तो अच्छा था। भीतर कुछ टूट-सा गया था, उसकी खरोंचों की पीड़ा धीरे-धीरे [illegible] जा रही थी जैसे किसी ने घावो पर मरहम के स्थान पर मिर्चें छिड़क दी हों।

वह उठा, बाहर देखा—बरामदे की उसी कुर्सी पर कमला बैठी हुई थी। [illegible]

आखिर चाहती क्या हो ? उसके स्वर से लगा कि वह रो देगा—क्यों इस तरह परेशान कर रही हो ? क्या इस जिंदगी में कभी सुख भी···कहते-कहते उसका गला अवरुद्ध हो गया और भीतर आकर थाली पलंग के नीचे रखकर फूट पड़ा···

काफी देर तक हिचकियां ले-लेकर रोता रहा, आंसू थमने को होते तो वह जीवन की किसी दुखद घटना को याद कर फिर सिसकने लगता। मन-ही-मन वह कवि टैनिसन की पंक्तियां भी याद कर लेता था—'मी मस्ट वीप आर शी विल डाई' दुनिया क्लबों, सिनेमाघरों व थियटरों, होटलों में मौज-मस्ती के आलम में डूबी होगी, चारों ओर रंगीनियों व मस्तियों की फुवारें होंगी और नशे का बेपनाह आलम,और वह जिंदगी की हर बाजी हार कर आज अपने आपसे भी हार बैठा था···एक-एक क्षण, आकांक्षाओं को कैंची की तरह काटता हुआ निकल रहा था।

"मेरी कसम है अब चुप हो जाओ' सिसकते स्वर में कमला ने कहा और लाइट बुझाकर उसे आगोश में ले लिया।

× × ×

बादलों ने शहर का घेराव कर लिया था और सूर्य के माध्यम से वह बाहर निकलने के लिए कसमसा रहा था। पिछली रात परेशान होने और देर से सोने के कारण वह अभी तक सो रहा था। रविवार था, इसलिए कमला ने उसे उठाया भी नहीं बल्कि रजाई अच्छी तरह से डालकर चली गई थी।

किवाड़ खटखाने की तीव्र ध्वनि ने अचानक उसकी आंखें खोल दीं। रजाई पैरों से उछाल कर वह उठ बैठा—सिर के एक कोने में जैसे ब्लेड से कोई खुरच रहा था—हाथों से सिर को जोर से दबाया और आवाज दी—कौन है बाहर ?

झांक कर देखा दो पुलिसमैन भीतर प्रवेश पा रहे थे। सिर का दर्द अचानक तीव्र हो उठा। पास में रखा स्वेटर पहना और मफलर उठाकर सिर पर बांध लिया।

सलाम करके सिपाहियों ने जो कुछ बताया उसका आशय यह कि वे यहां के एस० पी० साहब के यहां से आए हैं, जिनके यहां रात को दूसरे एस० पी० साहब सक्सेना साहब पधारे हुए हैं, उनका सामान आपके यहां रखा हुआ है, आपको वहां बुलाया है।

'वे आ भी गये हैं' उसकी बौखलाहट आश्चर्य जिज्ञासा के साथ-साथ खिन्नता भी छिप नहीं पाई। कमला एक रहस्यमय मुस्कान ओढ़े चुपचाप खड़ी हो रही।

उन्होंने जीप भेजी है उस सिपाही ने कहा, जो उसकी बौखलाहट को देखकर आनन्दित हो रहा था और व्यंग्य भरी मुसकान पहने उसकी ओर देख रहा था कि ऐसे टटपूंजिया मास्टर को बुलाने के लिए भी एस० पी० साहब के यहां से जीप आती है।

'जीप आई है ?' वह उछला, जैसे उसे मंत्री पद की शपथ लेने के लिए राजभवन से बुलावा आया हो।

'देखो' उसने कमला को सम्बोधित किया—'इन साहबों के लिए चाय बनाओ जब तक मैं हाथ-मुंह धोकर आता हूं।'

'अरे नहीं साहब' वह सिपाही बड़ी रुखाई से बोला, आप तैयार हो हम अभी वापस आते हैं और बिना उत्तर सुने वे बूटों से आगन को कुचलते हुए बाहर चले गये।

'बस, देख लिया?' उनके जाते ही कमला फट पड़ी—अब वह मैत्री और आदर्श कहा गये? आखिर अफसर बनते ही इन्सानियत गायब हो गई न। सामान रखने के लिए हमारा घर है, पैसे लेने के लिए हमारा घर है, लाइब्रेरी से किताबें मिलाने के लिए आप हैं पर कभी सोचा है कि पूरा एक कमरा भरा हुआ होने पर चार साल से उनको कितनी तकलीफ हो रही होगी, सामान किराये पर रखकर जाता तो कितना पैसा लगता? हम भी तो किराया दे रहे हैं···'

बिना कुछ कहे वह बाथरूम की ओर चला गया पर चेहरा इस बात का गवाह था कि कमला की बातों से सहमत होने के लिए संघर्ष कर रहा है।

× × ×

जीप एस० पी० के बंगले में घुसी तो बंदूकधारी एक सिपाही आगे आया और उसको लान में पड़ी कुर्सियों की ओर बैठने का इशारा किया। औपचारिक और अजनबी वातावरण उसके चारों ओर मंडराने लगा। थके कदमों और तनावभरे चेहरे से वह कुर्सी पर जाकर बैठ गया। तभी एक गेंद आकर क्यारियों के पीछे छुप गयी, जिसके पीछे एक नन्हा प्यारा-सा बालक दौड़ता हुआ आया और चकित आंखों से इधर-उधर देखने लगा। उसकी रगों में खून का संचार हुआ—'बेटा, वह रही गेंद।'

'थैंक्यू' वह बच्चा गेंद उठाकर उसके निकट आया।

'क्या नाम है तुम्हारा?'

'अनिल सक्सेना!'

'सक्सेना?' यहां का एस० पी० तो पाठक है!' 'तुम्हारे डैडी कौन है?'

'मि० विजय सक्सेना, एस० पी०' बच्चा भाग गया।

'सक्सेना!' उसके मस्तिष्क में काटन मिल की तरह एक साथ मशीनें चलने लगी। वह घबरा उठा—तो क्या सक्सेना ने शादी कर ली? बच्चा पांच के आस-पास होगा—क्या वह यहां सपरिवार आया है? चार वर्षों के बाद कल ही तो चिट्ठी आई थी—इस बीच उसने क्या किया? कहां रहा? क्या पता? किस पर विश्वास करे कोई? सच्ची मैत्री का उदाहरण प्रस्तुत करने में उसने क्या कसर रखी थी? क्या स्वार्थ था इसमें उसका कितनी बार रजिस्ट्रियां करवाकर भेजा है? लाइब्रेरी की पुस्तकों का पैसा चुकाया है। वे पांच सौ रुपये अगर बैंक में होते तो दुगने हो गये होते। दाम्पत्य जीवन की खुले आम बरबादी आज तक होती आई है—सिर्फ इस सक्सेना की मैत्री की खातिर। हाथ क्या लगा? बरबादी और तबाही। धू-धू कर जलता दाम्पत्य जीवन का स्वप्नगृह। खुद ही बुलवाया और अब यहां बोर करने के लिये बैठा दिया है। इतनी तमीज नहीं कि घर आये व्यक्ति से मुलाकात तो कर ली जाए? क्या सचमुच इंसान इतना स्वार्थी हो जाता है? प्रभुता पाही काहि मद नाहि···'

'सर' मेज पर एक बाउटल पानी भरा गिलास रखने लगा—'सक्सेना की

क्या कर रहे हैं ?' उसका गला बिल्कुल सूख गया था, बड़ी मुश्किल से ये शब्द बाहर आये ।

'फ़ेमिली के साथ नाश्ता कर रहे हैं—अभी आ रहे हैं' उसे हैरानी हुई कि कांस्टेबल तमीज से बात कर रहा था ।

'क्या सक्सेना साहब की फैमिली भी आई हुई है ?' उसने जैसे हवा से प्रश्न किया ।

'हाँ अपनी मेम साहब के साथ नाश्ता कर रहे है' बच्चा भी वही है ।

वह चला गया पर उसके दिमाग पर जैसे टनो बोझ रखकर गया। अब यहा ठहरना और अपमान है । गर्ज होगी तो घर आकर सामान ले जायेगा । नाश्ता कर रहे है तो'''खैर, अब भी सभल जाना ज्यादा अच्छा होगा ? बहुत भाग चुका मृगधारी चिका के पीछे । कदम-कदम पर चुभने वाले कैक्टसो को गुलाब समझकर कब तक चला जा सकता है ? दूसरे लोग जल पियें तो अपनी प्यास कहा बुझ सकती है । आप मरे स्वर्ग नही मिलता ।

वह उठ खड़ा हुआ । फाटक तक आया, बन्दूकधारी सिपाही ने उपहास की दृष्टि से देखा—ऐसे निक्कमे लोग रोज ही यहां आते है । वह बाहर निकलने ही वाला था कि 'हलो' का स्वर उसे सुनाई दिया। सक्सेना उसकी ओर आ रहा था— वह फिर पुराना मित्र बन गया और लपककर उसके पास गया तो उसने इधर-उधर देखकर ठंडा-सा हाथ आगे बढ़ा दिया।

'एक्सक्यूज मी, आई हे बीन वेरी बिजी सिंस आई केम हियर लास्ट नाइट । हां, अभी आप घर पर रहेंगे न ?'

'हां, हां, उसमे ताजगी लौट आई थी 'आ रहें हो न ।'

'नही' सक्सेना ने सिर हिलाया कुछ और काम है, फिर आऊंगा—हां अभी दो तीन सिपाही आकर मेरा समान पैक कर देंगे । 'वह धीरे से हँसा—'सुरक्षित है न ।'

उसके चेहरे पर कालिख पुत गयी । सक्सेना शायद भाप गया था 'अरे मैं तो मजाक कर रहा था—भाभी जी कैसी है ? फाइन ?' तभी जीप आ गयी । रामधन नीचे उतर कर खड़े ड्राइवर से सक्सेना ने कहा—'तुम इन साहब के साथ जाकर सामान ले आओ—कुछ आदमी और ले लो ।'

ड्राइवर सलाम कर जीप मे बैठा कि उस काहाथ पकड कर सक्सेना ने कहा—'अच्छा आप इनके साथ चलिये । 'सी यू' और चसके जीप में बैठते-बैठते वह भीतर चला गया ।

× × ×

रास्ते भर वह जिस भयकर तूफान से गुजरा था, उसकी उसने कभी कल्पना भी नही की थी । सक्सेना ने अपनी फैमिली के बारे में बताया तक नहीं और न ही उसके यहा आने में कोई रुचि दिखाई है ? कितना बेवकूफ बना वह इन मामलों में ? कमला इन्सान को पहचान लेती है, पर वह आज भी इस मामले मे बस मूर्ख है । सक्सेना के

पुलिस सेवा में आने पर वह क्या क्या कल्पना करने लगा था ? जैसे वह स्वयं ही इस सेवा में आ गया हो। नवनेता ने तब इसका श्रेय उसे दिया ही था। क्या उसने कहीं भी उनकी हेठी नहीं की ? पर अब क्या फायदा इन बातों को याद करने से ? वक्त एक-सा नहीं रहता तो इन्सान भी एकसे नहीं रहते। आहत अहं की चीत्कार सुनने की फुर्सत आज किसको है ? देश के उच्चतम व्यक्तियों से लेकर निम्नतम तबके के लोग अपने-अपने स्वार्थ व अहं की तुष्टि में लगे हुए हैं—यही सबका आदर्श बन गया है। ईमानदार और शरीफ इन्सान तो बेगुनाह मारा जाता है। दम्भी, चालाक अहम्मन्यता से परिपूर्ण तंग-दिल, धूर्त और स्वार्थी बनो और इसी राह पर चलने के लिए अन्य लोगों को भी प्रेरित करो, यही जीवनदर्शन होना चाहिये, वरना फूल से नाजुक दिल वाला, दयावान और परोपकारी बनकर सिर्फ अपना दिमागी, दिली और भौतिक दिवालीयापन ही घोषित करना है।

× × ×

गली में घुसते ही लोगों की आंखें जिस सन्देह और विचित्रता के चश्मे पहनकर उस पर टिकी, वह शरम से पानी-पानी हो गया। उतर कर उसने जोर-जोर से दो-चार व्यक्तियों को कहा भी—'अपना पुराना एस-पी मित्र अपना सामान लेने आया है' पर सिपाहियों की आंखों में नाचते व्यंग्य और उपहास को देखकर वह चुप हो गया। कमला द्वार पर आकर जीप के भीतर आंखों से टटोलने लगी—वह कमला की ओर देखने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। अच्छा हुआ कमला ने पहले से ही कमरा खोल रखा था वह सिपाहियों को लेकर उस कमरे के आगे खड़ा होकर बताने लगा—यह सारा सामान उन्हीं का है—सिपाही जीप के पीछे खाली खोखे वगैरह भी लाये थे, इसका पता तभी चला।

वह भीतर जाकर लेट गया। कुछ पूछने के लिए कमला के मुंह में हरकत हुई तो उसने सिपाहियों के पास खड़ा रहने का इशारा कर दिया। कमला के बाहर जाते ही उसने रिजाई ओढ़ ली। वाह री दुनिया। वाह री किस्मत। क्या-क्या खेल देखने बाकी थे ? इन्सान किस सफाई से आंखें फेर लेता है। क्या गजब का अभिनेता है हर इन्सान। यह अभिनय उसने क्यों नहीं सीखा। क्यों उसने बिना मुखौटे के जिंदगी के करीब चालीस वर्ष बेकार में गवा दिए ? मानवता, सहानुभूति और दया के चंद नीलामशुदा प्लाटों पर वह घर बनाने का विचार करता रहा, जबकि नीलामी की बड़ी बोलियां देकर कुछ लोग उन्हें खरीदकर अपने पास रख चुके थे।

सिर पर पड़ने वाले हथौड़ों ने उसे बेचैन कर दिया। यह क्या मजाक है कि जिस व्यक्ति के लिए अपना जमीर तक बेच दिया, उसने उसे खाने के बाद कागज की प्लेट की तरह मरोड़ कर फेंक दिया है। जिस व्यक्ति के लिए उसने जीवन के अमूल्य वर्ष दाव पर लगा दिए थे, उसे उससे दो मिनट बात करने की फुर्सत नहीं है। लानत है ऐसी मित्रता पर, ऐसी आत्मीयता पर और थू है ऐसी जिंदगी पर, जिसमें ठोकरें खाकर भी इन्सान नहीं चेतता। निरंतर मौत देखने के बाद जिस तरह आदमी को मौत

कान्स्टेबल बाकी सामान लेकर चले गये थे। सफाई के काम से निवृत्त हुई कमला बाहर आई तो वो ठिठक गई। वह पति के पास बैठकर [illegible] उन्हें [illegible] कर रहा था। उनके हृदय से लेकर बाहों तक कंपन की रेखाएं दौड़ रही थीं— नेत्रों से आकर पति को गोद पर हाथ फेरना शुरू किया। 'आह···हूं···' की ध्वनि के साथ उच्चारण समाप्त कर वह उठने की कोशिश करने लगा। सहारा देकर वह उसे बिस्तर तक ले आई—'आप क्या इतना [illegible] कर रहे हैं? क्या होगा इससे?···' अवरुद्ध गला लिये वह बाहर गयी और पानी की बाल्टी नाली में गिराने लगी।

'ठक्-ठक्' दरवाजे पर दस्तक सुनकर 'कोई आए तो कह देना वह बाहर गया है' बड़ी मुश्किल से रुक-रुक कर वह बोला—

'अब जिसे जवाब देना होगा' मैं दूंगी। कमला जैसे किसी चुनौती का सामना करने के लिए खड़ी हो गयी 'आप चुपचाप लेटे रहिये, बिल्कुल मत बोलना। चाहे कोई लाट साहब हों।'

दरवाजा खोलते ही पुलिस की वर्दी में जो पुरुष भीतर आया उसने कहा—'मैं आत्माराम, यहां सिटी कोतवाली में कांस्टेबल हूं और गुरुजी का शिष्य रहा हूं 'कमला के प्रश्नचिह्न चेहरे को देखते हुए बोला—'मैं सक्सेना साहब से भी पढ़ चुका हूं। अभी गुरुजी के बारे में यहां कोई कह रहा था कि यहां से सक्सेना जी का जो सामान गया है, उसमें स्टील के कुछ बर्तन नहीं हैं। कमला के चेहरे के बदलते रंग को देखकर वह बोला—'ऐसा है आप नाराज न हों—मेरे ख्याल से उनको गलतफहमी हुई है। यहां

मिसेज सक्सेना किसी ओर को भेज रही थीं कि तुम्हीं को बुला लाओ। मैं वहीं खड़ा था, मैंने कहा, मैं देख आता हूं।'

भीतर दरवाज़े की ओर देख और अपने टपकते आंसुओं को पोंछकर कमला ने कमज़ोर स्वर में कहा—'इनकी तबियत ठीक नहीं है और सामान ले जाने के बाद मैं उस कमरे में जा ही नहीं सकी। देखें।'

कमरा अस्त-व्यस्त था सूना पड़ा था। चारों ओर फैले अखबार, गत्ते के टुकड़े, रस्सी के टुकड़े और धूल कमरे की ओर भी भयंकर कर रहे थे। काम के दो चार टूटे टुकड़ों के पीछे चूहे काटे अखबारों को हटाते ही दुबके हुए बर्तन नज़र आये। एक दूसरे में फंसे गिलास के भीतर दो गिलास चार चम्मच सब एक छोटी थाली में पड़े थे।

'उन बेवकूफों ने कमरा तो पूरी तरह से देखा नहीं और सामान खोने की सूचना दे दी आत्माराम ने लाल-पीला होकर कहा।

कमला आंचल आंखों से लगाकर सिसकती रही।

सामान लेकर आत्माराम जीप में बैठने लगा तो कमला ने कराहते हुए कहा—'अगर और कुछ रह गया हो तो आप ही कृपा करके आकर बता जाना। सक्सेना जी से कह देना कि हम लोग अभी-अभी कहीं जा रहे हैं कोई कसर रह जाय तो कह लो...' और उसने अपना मंगलसूत्र उतारना शुरू किया ही था कि आत्माराम ने जीप स्टार्ट कर दी।

०००

रावण टोला

० सूरज पालीवाल

०००

रामलीला समाप्त होने में पांच दिन बाकी थे। शहर मे पढ़ने वाले लड़के भी रामलीला का बहाना लगाकर गाव में ऐसा कर रहे थे। लाल छींट की साड़ी जैसे तहमद को फैशन चला दी थी—इस बार गाव में। बाल भी बाजने के मोहन कट नही, कहते थे, 'बस एक ही नाई है अलीगढ़ मे, जो ऐसे बाल काटता है। और मालूम है—तीन रुपया लेता है—मशीन छुआने भर के। तीन से कम में तो बात भी नही करता।' 'टेढ़ा नाई बहुत खुश है। अब तक तो गाव का हर आदमी डोरा बाधकर छटवाता था—बहुत देर लगती थी। और अब नीचे-नीचे चार-छ कैंची मारी और बन गये बाल। ऐसे तो वह दिन मे हजारों के बाल बना सकता है। उसने बहुत जल्दी सीख ली—यह अंग्रेजी कट। सीखते वक्त उसके मन में सबसे अधिक होस इस बात की थी कि—तीन नही एक रुपया तो मिलेगा नकद। मगर सब कातिक—बैसाख के हिसाब में ही गये। टेढ़ा दुखी है कि शहर के नाई को तीन रुपये नकद देंगे और मेहमान की तरह बातें करेंगे और गांव के टहलुआ को देने के नाम प्राण निकलते है। खादर में गाय चराने वाले लड़को के बालो के डीगर भी अब खत्म हो गये—रोज धोते हैं डबल शेर साबुन से। ऊपर से हप्पू तेली का असली सरसों का तेल। साल मे एक ही महीना तो बालों के अच्छे दिन होते हैं, वरना पूरी साल साबुन-तेल तो दूर मीडना भी मुश्किल हो जाता है। इस बार माग बगल से नही बीच से निकालने की फैशन चली थी।

घूरे की पानों की बिक्री—बस पौबारे पच्चीस थे। होश नही पड़ता था—घूरे को। एकाध बीड़ी पीवा दोस्त और बैठ जाते दुकान पर। बैठे ठाले करें क्या तो उंगली से कत्था चूना चुपड़कर सुपाड़ी और लौंग ऊपर से रखकर पान लगाते रहते। कितना कत्था, कितना चूना—यह तो घूरे को भी आज तक नही मालूम और तो सब जानें। जिन्होंने सिवाय चौपाल की चिलम के बीड़ी भी नही पी—साल भर तक, वह पनामा सिगरेट से नीचे तो बात नही करते, पीते क्या है टूट पड़ते हैं। दोनों उंगलियों मे दबा ऐसे घूट मारते, मानो सिगरेट न होकर अजमेरी की चरस की सुलफाई हो। दो तीन कशो में ही सिगरेट का मलीदा निकाल देते है।

हरस्वरूप की बूरे की मिठाई खूब बिक रही थी। चम्पा पुजारिन रोज सुबह उठकर कम से कम हजार गालिया देती और सारे गाव का चबूतरा बाधने का भगवान

से हाहाकार मे म्वर मे निवेदन करती, उसके घेर मे पये कड़े रोज फूट जाते। सुबह दिखायी देते बस फूटे कडे और पेडो के खाली थैले। जिन लडकियो को कभी गुड़ भी नसीब नही हुआ, वे भी अब पाव भर पेडो मे नीचे तो बात ही नही करती। और पान, अरे बगैर पान के भी मुहब्बत होती है कही। पुजारिन का फूटा घेर भी पवित्र हो जाता है, साल में एक बार तो। कड़े तो कडे बिटोरो के अदर भी थैलो के ढेर पाते। चम्पा अब इस गांव को गांव न मानकर रडियों का मुहल्ला मानती है। और हर जवान लडकी को घोर नरक मे जाने का हुक्म देती, ताकि यह गाव बच सके।

रामलीला मे रोज लट्ठ तनते। समझौता भी आनन-फानन मे ही हो जाता। चूंकि समझौता न होने मे इन्हे ही नुकसान था—एक दिन बेकार जाता। बडी परेशानियो के बाद तो रामलीला होती—साल मे एक बार और उसमे भी एक दिन खाली यही सोचकर निकली हुई लाठियां धरी रह जाती। सूर्पणखा की नाक कटने वाले दिन लोग तो उसकी कटी नाक और एक्टिंग को देखकर हँस रहे थे और सूर्पणखा चारो ओर गेरू की बौछार कर रही थी—हाय रे, मेरी नाक कट गयी रे, रावण भैया। और पारुआ ने मौके का लाभ उठाकर सामने पेडा फेंक दिया। लडकी तो मुस्करा दी, लेकिन पास ही खड़े हरिया पडित ने इसका जबर्दस्त विरोध किया और नौबत यहा तक आ गई कि पारुआ का सिर अब कुछ ही क्षणो मे तरबूजा होने जा रहा था। इसी बीच उसने सटापट निर्णय लिया और हरिया को एकात मे ले जाकर पनामा पिलाई, पान खिलाया और थोडी देर बाद बिटोरे मे घुस गए—दोनों। बन्नी जाट की लडकी पेडे का स्वाद लेती हुई पेशाब करने आ गई।

पेड़ो की ऐसी बौछार शायद ही कही होती हो, जितनी रामलीला मे। रामलीला कहा चल रही है, इस फिजूल विषय पर सोचना बुजुर्गों का काम है, लडको का मन तो सामने ही रहता—चाहे सीता हरण हो अथवा लक्ष्मण को शक्ति लग रही हो।

आखो की भी आफत आ जाती है—उन दिनो। सरसो के तेल की बत्ती से पारे पर उतरी कालौच से आखें रोजाना रगी जाती। यदि कोई भूल भी जाता—जल्दी-जल्दी मे तो दुबारा भाग कर जाता और आखें रगकर आता—चाहे जल्दी मे आखों के साथ-साथ मुह ही निशाचरो जैसा क्यो न हो जाए। सबकी आखें दिये वाली दिवाल की तरह हो गई हैं—काली-काली। ले देकर सारे गाव मे दो ही कुए हैं—इसलिए भीड़ लगी रहती—नहाने धोने वालो की। कूयें पर साबुन लगाना मना है। अतः पास के ही तालाब मे सारे गांव के मैल का साबुन भर रहा है। डबल शेर साबुन की इतनी खपत इसी महीने मे होती, वरना पूरे साल मक्खियो के हगने से ऊपर के घेर भी अदृश्य हो जाते।

हरिजनों के दो मुहल्ले हैं और दोनों ही गाव से बाहर। एक उत्तर की ओर और दूसरा दक्षिण की ओर। दोनों के पास पोखरे हैं, जिनमे वहा के लडके कारो पर साबुन पिसते रहते हैं। दक्षिन वाला मुहल्ला बाल्मीकियो का है और उत्तर वाला

सालों का। इलाके वालों का गांव के रावण-दोष कहते हैं। इसका कारण इतना सा है कि इसी मुहल्ले का सरपतिया रावण बनाने में सिद्धहस्त है। आस-पास के बारह गांवों में कहीं भी रामलीला हो रावण सरपतिया ही बनाता। सरपतिया का रावण देखने बारह गांव तो क्या बाहर के लोग भी आते। उसके रावण में कोई न कोई विशेषता अवश्य होती। विशेषता न होती तो मुनीर का रावण-अभियान क्यों ठप्प पड़ता।

इस बार सरपतिया को पता नहीं क्या सनक सवार हुई कि उसने रावण बनाने को साफ मना कर दिया। दो मन बाजरे में अब रावण नहीं बना सकता वह। पता है कितनी तेजी हो गई है—हर चीज पर। दो मन बाजरे में तो आतिशबाजी भी नहीं आ सकती, कागज और मेहनत तो दूर। और ऊपर से यही धौंस कि पुतला चालीस से कम न हो, सरपतिया। सरपतिया क्या अपनी झोंपड़ी बेच दे, रावण के लिये। इतने बड़े-बड़े पेट वाले हैं गांव में, लेकिन देने के नाम पर प्राण निकलते हैं—सबके। वैसे रामलीला में ऐसे बन-ठनकर बैठते हैं—मानो रामलीला न होकर इनके बेटे की शादी का जनवासा हो। और जब सरपतिया चबूतरे पर रुपया भी देने आ जायें, तो पचास गालियां। बैठे रहो धन्ना के पड़ाव पर—इतनी दूर। स्वरूपों के चेहरे भी साफ दिखाई नहीं पड़ते। इस बार रावण बनवाना है तो पांच मन बाजरा सूपा। अपनी मेहनत को क्यों छोड़ूं? जब रम्मी बनिया ही नहीं छोड़ता तो। रम्मी बनिया वैसे हर साल हजारों डकार जाये और मंच पर ऐसे गद्गद होकर नारे लगाता है, जयजयकार करता है, पोपले मुंह में बिना सुपारी का पान रखकर, जैसे शंकराचार्य हो। जिंदगी भर गले काटता रहा गरीबों के और अब चला है शंकराचार्य की ऐसी-तैसी करने। सब साले दाऊ पीर हैं। जो जितना बड़ा भगत है, वह उतना ही बड़ा बेईमान। रामलीला मंडली क्या है, बूढ़े बेईमानों की लुच्चई है। सरपतिया हरेक को जानता है तह से, और हमसे कहते हैं कि रामलीला—। हमारे लिये रामलीला और रावणलीला दोनों ही बराबर हैं। राम तुम्हारे हुंगे—हमारे तो जो रोटी देता है—वह देवता है।

रामलीला मंडली इस विषय को लेकर बेहद चिंतित थे। सरपतिया के लाख निहोरे किये हैं, सबने, लेकिन वह कहा मानने वाला। अंत में हारकर बाबूजी ने भी रात बातें की थीं कि—"गांव का मामला है—सरपतिया। इसमें नुकसान-फायदा नहीं देखा जाता। और भगवान के नाम पर तो जितना दे सको, उतना ही कम है। यह तो पुण्य का काम है। भगवान के नाम पर देने से भगवान भी देता है।" बाबूजी एक-एक शब्द तोल-तोल कर निकाल रहे थे। उंगलियों में फंसी सिगरेट कांप रही थी।

सरपतिया पर इसका कोई असर नहीं हुआ। रावण तैयार न होते देख खज्जी जोकरी का काम कुछ ज्यादा ही बढ़ गया, हँस-हँसाने में एक घंटा गुजार देता है—वह और रामलीला एक-एक दिन करके रोज खिंच रही है। लड़के अत्यधिक प्रसन्न हैं। सरपतिया को आशीर्वाद दे रहे हैं—मन ही मन।

एक दिन सुबह से ही नारायण बाबूजी के चबूतरे पर शाम तक पंचायत ठुकी। सारा गांव इकट्ठा था—हरिजन, जाटव और खटीक मुहल्ले को छोड़कर। नाई

वैसे ही अलग रहते हैं। जवान बम्बई मे कमा रहे हैं और बूढे खाटो मे पडे हुक्का गुड-गुडा रहे हैं। गाँव की राजनीति उन्हे इन्द्रासन है। पचायत कही भी हो जाट ही अधिक आते हैं। जाटो के लिए पचायत का महत्व फी का हुक्का है। यहां भी वैसा ही है। आगे गाव के सभ्रात नागरिक हैं, और पीछे टलुआ लोग। पीछे वाले रामलीला के विषय को छोड़कर हुक्के से दुश्मनी निकाल रहे हैं। चिलम भरकर आयी नही कि लपक लिया बीच मे ही। आगे वालो को अभी तक एक चिलम भी पूरी नही मिली। गीले कडो का धूआ पीछे छा गया है। नाक रगडते-रगडते लाल हो गयी है—धोती का एक छोर पोछते-पोछते भीग गया है। पचायत मे क्या हो रहा है, हुक्के की गुडगुडाहट और चबूतरे के नीचे बच्चो की चिल्ल-पो के कारण कुछ सुनाई नही पड रहा।

शाम को आरती के वक्त तक प्रस्ताव पास हो गया और सरपतिया से साफ-साफ कह दिया गया कि यदि उसने रावण न बनाया तो, उसे और उसके मुहल्ले के किसी भी सदस्य को खेत की मेढ पर पाव न रखने दिया जायेगा—अदर से हरा लेना तो दूर। सरपतिया के मुहल्ले को साप-सा सूघ गया है। करें तो क्या करें—कोई उपाय नजर नही आ रहा। दो मन बाजरे मे तो वाकई अन्याय है, इस बेचारे का भी तो पेट है। और उन पर भी इतना पैसा नही कि सरपतिया की मदद कर ही सकें। इस साल कुछ पैसा कमाया भी, सडक बनाने के समय, तो वह भी अब ठिकाने लग गया। किसी ने धीरे-धीरे बूढी होती लड़की की शादी कर दी तो किसी ने बहन की और किसी ने टूटी झोपडी पर छान डाल ली। और फिर रह गये वैसे के वैसे ही नग फकीर।

हारकर रम्मी बनिया के साथ दो चार आदमी मुरीर गये, सुना है यहां का सोना कड़ेरा भी रावण बना लेता है। सरपतिया जैसा तो नही, पर काम तो निकाल ही देता है। बडी आशा लेकर गये थे, लेकिन सोना ने समस्त आशाओ पर पानी फेर दिया—सात मन बाजरे की कहकर। सात मन मे भी ऊचाई छ फाट और पच्चीस धूल गोले जबकि सरपतिया 40 फीट ऊचा बनाकर चालीस धूल गोले लगाता था। वापिस लौट आये, उतरा-सा मुह लेकर।

रात को फिर पचायत हुई, लेकिन कोई भी अधिक चदा देने को तैयार नही हुआ। बाबूजी के मुह की बनावट पिटे बराती-सी हो गई। बार-बार के कहने पर भी वही घिसा-पिटा सा जवाब मिलता—धरे हैं रुपये जो मिल जायेंगे, यहा पेटो के तो लाले पड रहे हैं, वहा रावण फूकने को चदा चाहिये। भाड मे जाये रावण और ऊपर से पच। गाव मे रुपये किसी पर भी नही। बाबूजी समझ गये, वास्तव मे रुपये कहा हैं। रुपये होते तो गाव की यह स्थिति होती। चारो ओर गरीबी का ताडव नृत्य। इसलिए बाबूजी ने सरल-सा उपाय निकाला। साप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। बाबूजी हाईस्कूल फेल हैं, पुराने जमाने के। अग्रेजी का कागज आज भी बाबूजी ही पढ़ते हैं? गाव के सारे पढ़े-लिखे नौजवान शहर मे भाग गये, इसलिये बाबूजी की आज भी गाव मे इज्जत वैसी की वैसी ही है। बाबूजी ने निर्णय लिया कि 'भारत जैसे गरीब देश मे रावण पर इतना पैसा खर्च करके उसे जलाना वाकई मक्कारी है, अन्याय है। अ

इस वर्ष यह मेला सादगी से मनाया जायेगा।' आगे बैठे लोगों ने बाबूजी की बुद्धि की दाद दी और पीछे वाले आगे वालों के सिर हिलते देख खुश हो गये। चलते-चलते हुक्के में कसकर एक घूट मारी। मारे खांसी के परेशान हो गये। खांसी के इस वैशिष्ट्य को देखकर बाबूजी का पालतू कुत्ता भौंकते-भौंकते पागल-सा गया।

रामलीला समाप्त हो गई। मंदिर पर टंगे परदे धीरे-धीरे हट गये। बांस-बल्ली किसी ने रात में पार कर दी। बहुत-सों की जलेबी खाने—खिलाने की आशाओं पर सरपतिया ने पानी फेर दिया। हरस्वरूप को खांड और मैदा धरी रह गई—धीरे-धीरे नीचे से चूहों ने छेद कर दिये हैं। परेशान है हरस्वरूप हलवाई। चम्पा ने ढेर सारे कडे थाप कर घेर भर दिया है- -अब कडे भी निरापद हैं और चम्पा भी।

रावण टोले के सूअर परेशान हैं। पाव भी फरेरे नहीं कर सकते। पोखरे के पास पडी गंदगी ही भोज पदार्थ बनकर रह गई। औरतें अंधेरे ही टट्टी फिर आती हैं, पोखरे के किनारे। खेतो वाले चिकनी तार ठुकी लाठियां लेकर रात-दिन पहरा सा दे रहे हैं। मिल जाये कही कोई खेत और खेत के आसपास, दिला दें छठी तक की याद। रावण-टोला जेल सा बन गया है। गाव बदले की आग में जल रहा है।

अभी-अभी अफवाह उडी है कि रावण-टोला में खैर की पैठ से लाठिया आई है और साथ में•••। नारायण बाबूजी रात-दिन अफवाहों का खंडन कर रहे हैं।

रम्मो बनिया के यहां पुलिस की चौकी खुल रही है। हो सकता है—यह अफवाह ही हो, लेकिन सुना—नारायण बाबूजी कह रहे थे। पता नही बाबूजी क्यों कह रहे थे।

रावण टोला बदला लेने को तैयार है। कब तक ऐसे दबकर रहेंगे। जो होगा—एक बार हो लेने दो—देखा जायेगा। ०००

अंत

• राजानन्द

०००

शव आंगन में रखा है। काफी देर तक रोने के बाद औरतें चुप हो चुकी हैं। सिर्फ हल्की-हल्की सुबकियां कमरों में से आ रही हैं। बच्चों को ऊपर कर दिया गया है जो लोहे के जंगलों में से कोशिश करके झांक रहे हैं। शव के चारों तरफ काफी आदमी इकट्ठे हैं—एक बड़ी भीड़ बाहर है।

शव का सारा जिस्म गर्म चादर में ढका हुआ है, सिर्फ चेहरे का हिस्सा खुला हुआ है। चेहरे पर एक अजीब-सी ताजगी और शान्ति है। ऐसा लगता है जैसे वह चैन से सो रहा है। रात अचानक उसको दिल का दौरा पड़ा और जब तक डाक्टर रोग को काबू में ला पायें कि सारी स्थिति बेकाबू हो गई। और उसका दम, हाथ की मछली की तरह फिसल गया।

सूचना सनसनी खेज खबर की तरह रात और सुबह के बीच शहर में फैल गई। दोस्त, अहबाब, साथी और अनुयायी आने-जाने लगे। साल भर पहले तक वह लोगों की जबान पर चढ़ा हुआ नेता था। अब वह एक तरह से अवकाश का जीवन बिता रहा था, जैसे सक्रीय-राजनीति ने उसकी छटनी कर दी थी। ऐसा होता रहता है। चाहे जब हो जाता है।

शव आंगन में रखा हुआ है। मैं दूर खड़ा हुआ उसको देख रहा हूं। बार-बार नजर उसके चेहरे पर ठहर जाती है। एक गहरी शांति है। किसी भी प्रकार की व्यथा या तनाव नहीं है। उसने मृत्यु को शायद सहजता तथा संतोष से स्वीकार किया है। मैं सोच रहा हूं क्या वह वास्तव में इस घड़ी की प्रतीक्षा में तो नहीं था?

'भाई साहब आप यहां खड़े हैं, बाहर आपसे लोग सलाह-मुशविरा लेना चाह रहे हैं।' एक परिचित मुझसे आकर कहता है।

'हां' मैं ऐसे ही कह देता हूं। वास्तव में मेरी जड़ता एकाएक टूटती है। 'चलो' मैं उनसे कहता हूं, और उनके साथ बाहर आ जाता हूं।

यह पहले ही तय हो चुका है कि अर्थी को किसी ट्रक में न लेजाकर, कंधों पर लेजाया जायेगा। यह भी निश्चित हो गया है कि अर्थी करीब दस-बारह बजे के बीच उठेगी।

वह लोग जो अर्थी को सजाने का इन्तजाम कर रहे हैं, वे मुझे घेर लेते हैं। एक बताता है—हम इतनी हार-मालाएं ले आए हैं। दूसरा बताता है—पूरे रथ के फूल

आदमी नौ बजे तक यहां पहुच जाएगे। मैं घड़ी देखता हूं-साढ़े आठ बज चुके हैं।

वे दोनों चले जाते है। दूसरे दो व्यक्ति आते हैं जिन्हें मैं नही जानता।

उनमें से एक, जो लम्बा, पतले बदन का और निचुडे मुह का है, मुझसे कहता है, 'हम लोग भी आ गये है, पार्टी के झंडे का हमने इंतजाम कर लिया है। हमारे साथी साढ़े नौ बजे तक पहुंच रहे हैं।'

'झडा' मैं आश्चर्य से उसकी तरफ देखता हूं। और कहता हूं, लेकिन झंडा क्यों? वह तो किसी पार्टी में नही थे उनको पार्टी छोडे हुए तो अरसा हो चुका।

'तब भी क्या हुआ। थे तो हमारी पार्टी में। दूसरा व्यक्ति कहता है।

'नही' उनकी अर्थी के, साथ झडा नही जाएगा। आप लोग बिना झंडे के शौक से चलिए आपकी भावना की कद्र करते है हम।' मैं काफ़ी दृढ़ता, लेकिन भद्रता से कहता हूं।

उस लम्बे आदमी के माथे पर सलवटें पड जाती हैं, जैसे मैंने उसके सस्कारों को चोट पहुंचा दी हो। मैं अपनी बात को और सहज करता हूं—'उनकी अर्थी को सादगी से उठाना चहिए वरना उनकी आत्मा को दु ख पहुचेगा', वह आत्मा को नही मानते थे। 'हमारी पार्टी आत्मा-परमात्मा को नही मानती। यह दकियानूसी विश्वास है। धर्म अफीम है।' वह दूसरा व्यक्ति रटे-रटाए पाठ की तरह अपनी बात कह देता है।

'फिर भी हम नही चाहते कि किसी भी पार्टी का निशान उनकी अर्थी के साथ हो। आपको उनकी भावना का आदर करना चाहिए।' मैं उन दोनों को समझाने की कोशिश करता हू।

वह निचुड़े हुए मुंह का दुबला-पतला आदमी जोश में तमतमाता हुआ कहता है, 'आपको हमारी भावना और हमारी पार्टी की भावना की इज्जत करनी चाहिये। पार्टी की इज्जत उनकी इज्जत है, उनकी इज्जत पार्टी की इज्जत है। वह खुद नहीं बने हैं पार्टी ने उन्हे बनाया है।' उसकी बगल में दबी हुई झंडे की चादर खिसकती है, जिसे वह दूसरे हाथ से ऊपर चढाता है।

एक बुजुर्ग जो स्थिति को बिगड़ती हुई देखते हैं, उस नौजवान को कंधे से थपथपा कर एक तरफ ले जाते हैं और शायद कुछ समझाने की कोशिश करते हैं। लेकिन उन दोनों की भगिमा से ऐसा लगता है जैसे वह अपनी जिद्द पर अड़ रहे हैं।

मुझे फौरन एक बात सूझती है। मैं लौट कर गलियारे की भीड़ को पार कर आंगन में आता हूं, और उसके बेटे को धीरे से अपने साथ लेता हूं। उसे बता देता हूं कि बाहर उसे क्यों लेजा रहा हूं और उसे क्या कहना है वह भी निर्णयात्मक अधिकार के साथ। वह मेरे साथ बाहर आ जाता है और उन दोनों पार्टी सदस्यों तक पहुचता है जो अभी तक अकड़े हुए एक तरफ खड़े हैं। मुझे डर लगता है वह कहीं कोई हगामा न खड़ा कर दें।

'यह आपके नेता के बेटे हैं।' मैं परिचय देता हूं।

'जी, हम अपनी पार्टी की तरफ से आए हैं यह झडा भी लाए हैं। हमारे साथी

बाद मे आ रहे हैं। आपके पिता हमारे माननीय नेता थे।' मैं उस लम्बे आदमी की नम्रता पर आश्चर्य करता हू।

आप ठीक कहते हैं, लेकिन हम अपने पिता की अर्थी को सादगी से लेजाना चाहते हैं। उनका ऐसा ही कहना था।'

'हमारा भी उन पर अधिकार है।' दूसरा व्यक्ति तर्क करता है।

'मैंने आपसे कह दिया ऐसा नही हो सकेगा। क्या मैं आपको उनकी डायरी दिखाऊ जिसमे उन्होने लिखा है कि मुझे किसी भी पार्टी पर विश्वास नही रहा। मुझे राजनीति की कोई नैतिकता नही दीखती।' मैं देखता हू कि उसके बेटे को गुस्सा आ गया है। वह दोनो नौजवान हार से जाते हैं। लेकिन फिर भी बडबडा कर कहते हैं—'ठीक है जब हमारी पार्टी के लिए उनमे इज्जत नही रही थी, तो हमारे लिये वह क्या है। हम लोग जा रहे हैं। आप लोगो की इस जबर्दस्ती से हमे दु ख हुआ। चलो।' वह दुबला-पतला मगर जबर्दस्त अकड वाला व्यक्ति अपने साथी की बाह पकडता है और साथ लेकर चला जाता है। मैं छुटकारा पा जाने से शान्ति की सास लेता हू। बेटे से कहता हू—'तुम जाओ, मैं अभी अदर आ रहा हू।' वह चला जाता है।

भीड़ बढती जा रही है। धूप खुलती जा रही है। हल्की-हल्की ठड जो थोडी देर पहले थी, धीरे-धीरे कम हो रही है। लोग अलग-अलग मुण्डो मे इधर-उधर खडे या बैठे हैं। गली के दुकानदारो की दूकानो के सामने भी चार-चार, पाच-पाच आदमियो के गुट्ट है—कह नही सकता कि वह क्या और किस तरह की बाते कर रहे हैं।

मैं उन लोगो के पास आता हू जो टिखटी तैयार कर रहेहैं। उसके शरीर की चौड़ाई और उसकी साधारण आदमी से ज्यादा की लम्बाई के लिहाज से टिखटी भी काफ़ी चोडी और लम्बी है।

मैं वहा से हटकर उस तख्त को जाकर देखता हू जिस पर उसका शव रखा जाएगा, ताकि लोग आखिरी दर्शन कर सकें। मोहल्ले के चार-पाच आदमी जो थोड़ी दूर पर खडे है और जिनको पहले से ही बता दिया गया है कि उनको तख्त के चारो ओर की व्यवस्था सम्भालनी है, उनके पास जाकर मैं उन्हे सावधानी रखने के लिए कहता हू और यह भी बता देता हू कि पुलिस के आदमियो की सहायता वह लेलें। वे मुझे फिक्र न करने के लिए कहते है। मैं अदर जाने के लिए दरवाजे की तरफ बढ़ता हू। मुझे उन दो नौजवानों का ख्याल आजाता है जो अपनी बात न मनवा पाने से गुस्से मे चले गए। अदर-अदर एक बड़ी अजीब-सी अरुचि भर जाती है। दु ख-सा होता है। और एकाएक मन गिरने लगता है। एक इच्छा और हो रही है। अकेले म किसी जगह बैठ जाऊं और उस खालीपन के दबाव को महसूस करू जो उसकी अचानक की मृत्यु के कारण अदर भारीपन पैदा कर रहा है। लेकिन ऐसा कर नही सकता। मैं फिर गलियारे की भीड़ को काट कर अदर आगन मे आजाता हू।

उसके शव को नहला कर सफेद कपडे मे लपेट दिया गया है। उसका चेहरा खुला रखा है। मैं एक कोने मे खड़ा देख रहा हू। कमरो मे से औरतो की सुबकियां आ

रही हैं।

यह सब क्यों रो रहे हैं ? मेरे दिमाग में प्रश्न आता है, लेकिन उसी वक्त इस प्रश्न के बेमानी होने को भी मस्तिष्क समझ लेता है। क्या उसे भी अपनी मृत्यु का अफसोस रहा होगा। इस बारे में विश्वस्त साक्ष्य में कुछ भी नहीं है। मौत ने उसको अवसर ही नहीं दिया कि कुछ कह सके। चट-पट में काम कर गई। वैसे···जैसे···

मेरी नजर उस प्रेस फोटोग्राफर पर जाती है जो अन्दर आ गया है और दूसरे कोने से फोटो ले रहा है। मैं चाहता हूं कि न ले। क्या अखबार में फोटो के साथ यह निकलेगा कि भूतपूर्व मंत्री की मृत्यु !

भूतपूर्व मंत्री !···मैं उसके चेहरे को देखने लगता हूं। और उसकी जिन्दगी की सबसे महत्वपूर्ण और सबसे ज्यादा कलंकपूर्ण घटना झलक उठती है। उससे मैं भी जुड़ा हुआ था। उसने उस पार्टी को छोड़ने के अपने निश्चय को मुझे बताया था जिसमें वह आधी से ज्यादा जिन्दगी रहा। मैंने कहा था 'यह गलत है'। उसने कहा था—'मेरे लिये अब जरूरी है। तुम नहीं समझते कि मेरी ही पार्टी के लोग अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए मेरी राजनीतिक मृत्यु करना चाहते हैं। वह नीच और कमीने तरीके अपना रहे हैं।'

मैंने कहा था, 'इस तरह भी तो तुम्हारी राजनीतिक मृत्यु होगी।' 'नहीं', उसने दंभ से कहा था 'मुझे दूसरी पार्टियों का निमंत्रण है। मैं उनके साथ मिल कर मंत्री बनूंगा।'

'यह तुम्हारा लालच है।' मैंने उस पर दोष लगाया था। और उसने गुस्से में भरकर (यद्यपि यह एक प्रकार की उसकी सुरक्षात्मक क्रिया थी) मेरी उपेक्षा करते हुए कहा था 'तुम राजनीति को नहीं समझते। मुझे उनको अपना महत्त्व और ताकत दिखानी है जो मुझे और मेरे साथियों को नीचा दिखाना चाहते हैं।'

मैं आगे नहीं बोला था। इससे आगे बोलने की गुंजाइश नहीं थी, क्योंकि मैं जानता था कि यह अब अपने निश्चय को दृढ़ कर चुका है। वह मंत्री बन गया था।

बाहर के इन्तजाम करने वाले लोगों ने अब आदमियों के अन्दर आने को रोक दिया है। शव को उठाकर बाहर ले जाने की तैयारी हो रही है। उसकी पत्नी को उसके नजदीक ले आया गया है। उसकी चूड़ियों को फोड़ा जा रहा है। औरतें जोर-जोर से रो पड़ी हैं। मां, जो अब तक पत्थर-सी बनी आंसुओं को रोके हुए थी दहाड़ मार कर रो पड़ी है। बेटा उसकी कमर को सहला रहा है। मैं अपनी जगह जम-सा गया हूं। मेरे अन्दर कुछ कट-सा रहा है लेकिन आंखें शुष्क हैं। मैं चाहता हूं कि पास जाऊं और कहूं, 'भाभी रोओ मत, जो होना था वह हो गया' लेकिन मुझे लगता है मेरी ताकत खिंच गई है और मैं सुन्न हो गया हूं। सारा मकान रोने की आवाज से भर गया है। मैं चाहता हूं कि बैठक में जाकर उस कुर्सी के नजदीक बैठ जाऊं जिस पर वह बैठता था और उसके हत्थे पर अपना सिर रख कर आंख मूंद लूं। आंख मूंदे-मूंदे उसके न होने के अभाव को खामोशी तथा निरुद्विग्नता से अनुभव करता रहूं।

बेटे ने मां को हटा लिया है और लोग उसके शव को सहारा देकर उठा रहे हैं। मेरे पैर एकाएक खुलते हैं और मैं भी उसके उठते हुए शव को सहारा देता हू। गलियारे से शव बाहर निकाल लिया जाता है और टिखटी पर रख दिया जाता है। उस पर दूसरा कपड़ा ओढ़ा कर उसे बांधा जाता है।

लोग दर्शन के लिए टूटते हैं। पहले से ही तैयार व्यक्ति उनको रोकते हैं। 'आप लोग तख्त के पास चलिए'—दो-तीन व्यक्ति लगातार उनसे कहते रहते हैं। उसकी 'जय-जय कार' के नारे उठने लगते है। हार-मालाओ से उसकी अर्थी को सजा दिया जाता है। मैं फिर अलग हो जाता हू। लगता है, कुछ देर पहले जो शक्ति धारा की तरह उठी थी, वह खत्म हो गई है। उसकी अर्थी को सजा कर उठा लिया जाता है और चार-छ लोग उसे तख्त पर रख देते है।

मैं फिर स्थिति से कट-सा जाता हू। अजीब-सी अरुचि और तटस्थता पैदा होकर मुझे अलग कर देती है।

पुलिस के आदमी लोगो पर काबू रख रहे है। लोग आते है, और उसके दर्शन करते हैं और हार-माला डाल कर चले जाते है। 'जय-जय' के नारे लग रहे हैं और मैं अलग दर्शक की तरह खडा हू। मुझे ऐसा लगता है कि यह 'जय-जयकार' भावुकता का पागलपन है। क्यो नही खामोशी से हर कार्य किया जा रहा है? क्या जरूरत है इस शोर की? मेरी आत्मा तिलमिला उठती है। मेरी कल्पना के अनुसार उसकी अर्थी शान्ति से, बिना किसी आवाज के निकलनी चाहिए। लोग चिल्लाए-चीखें नही, शर्मिंदा होते हुए सिर नीचा किये हुए चलें। उसकी मौत मुझे उन आदर्शों की मौत लगती है जिसे उसने जीवन की ढलान पर आकर छोड दिया और वह, सटोरियो राजनीति, और दलाल वक्त का, शिकार बन गया।

इसे उसने बहुत जल्दी महसूस कर लिया था। उसने मुझे लिखा था 'मैंने कुछ नीच आदमियो से पीछा छुड़ाया था लेकिन दूसरे बिके हुए, गद्दार और दोगले लोगों के बीच में पड गया। मैं सोचता था मैं जनता के लिए अब तक जिया हू, आखीर तक उसी लिए जिऊगा, लेकिन यह असभव लगता है। मैं इस्तीफा दे रहा हू, और इस नीचता की राजनीति से सन्यास ले रहा हू। मेरे लिए यही पश्चाताप हो सकता है।'

उसने ऐसा ही किया था। उसने इस्तीफा देकर राजनीति छोड़ दी थी। वह मेरी नजर में बहुत ऊचा उठा था उस दिन।

'चाचाजी, काफ़ी वक्त हो गया, अब अर्थी उठवाइयेगा'। उसका बेटा आकर कहता है। 'हू' मै जैसे फिर सचेतित होता हू। अपने को परिस्थिति से जोड़ता हू। एक बार कलाई की घड़ी देखता हू दस बज रहे है। 'चलिये! आप ऐसे कैसे हो रहे हैं।' वह मेरे चेहरे को देखता है।'

'कुछ नही, 'जयकार' सुन रहा था।' चलो। हम दोनों तख्त तक आ जाते हैं।

हार और फूलों से उसकी अर्थी ढक गई है जिसके बीच में से उसका चेहरा चमक रहा है। मुझे वह अच्छा लगता है। एक लहर-सी सारी देह में दौड़ उठती है। शायद

सुख की। और फिर एक तृप्ति-सी छा जाती है अन्दर।

पुलिस के आदमियों ने घेरा बड़ा कर दिया है और लोगों को रोक दिया है। एक बार मैं पूरी भीड़ को दृष्टि घुमाकर देखता हूं कि उनके द्वारा दिये जाने वाले आदर से अपने मन की तृप्ति को और विस्तृत कर लूं। छतों पर औरतें खड़ी हुई अर्थी को और भीड़ को देख रही हैं। मैं एक बार सूरज को देखता हूं जो निष्कलंक होकर आसमान मे चमक रहा है। तीन कोने पर तीन और चौथे पर मैं होकर अर्थी को कंधे पर उठा लेते हैं। जयकार के नारे तेज हो जाते हैं। भीड़ चल देती है। हमारे चारों तरफ भीड़ ही भीड़ हो जाती है।

गली पार हो जाती है। अर्थी काफी भारी है इसलिए कंधों को जल्दी-जल्दी बदलना पड़ता है। मैं फिर पीछे हो जाता हूं।

जय के नारे का उत्साह मुझ पर भी असर करता है। ऐसा लगता है कि मैं खुद भी भीड़ मे बह चला हू। मेरे मुह से भी 'जय' निकलती है और तभी खट से हतौड़ी-सी सिर पर पड़ती है। मैं दातों मे होंठ को दबा लेता हूं। किस बात की जय? क्यो जय?

फिर वही पहला ख्याल घूम कर आता है। यह सब सिर झुका कर, शर्म से गर्दन नीची करके क्यों नहीं चलते? यह उसकी उस मौत पर मातम क्यो नहीं मनाते जिसने उसके सद्‌चरित्र की हत्या कर उसे स्वार्थी और आत्मपोषक बना दिया था।

अर्थी चलती जा रही है और जय-जयकार की आवाज बंद नहीं होती। मुझे हद की बेहयाई और जलालत लगती है। यह सोचते-सोचते पता नहीं क्या होता है कि मेरे मुह से 'जय' निकल जाती है जो मुझे खुद को जाचने लगती है। और मुझे लगता है मुझमे भी हर वह बेहयाई संस्कार बन कर घुस चुकी है जो इस नाजायज युग की खासियत है। जिसके न बाप का पता न मा का। और मैं अपने होंठों को दांत से कस कर काट लेता हूं।

अर्थी चल रही है और बाजार चल रहा है। सर्दी का रंग और उसकी खरीद-फरोख्त अपनी तरह से जारी है। लोग तमाशे की तरह अर्थी को देख रहे हैं, जैसे सिनेमा के पोस्टरों का जुलूस जा रहा हो। उनके लिए कोई भी नेता मरे या राजनीतिक बदल हो, कोई मतलब नहीं। वह खुद अपनी जिन्दगी के घेरे के बीच हाथ-पैर बंधे पड़े हैं।

मुझमे भी एक अजीब-सी विरक्ति, तटस्थता और मोह है। मसलन, कि एक बार सोचता हूं मैं अर्थी को कंधा दू, फौरन यह आता है कि अब क्या है। फिर आता है, दूसरे दे तो रहे हैं। मैं अर्थी को वास्तव में सहारा नहीं देता।

भीड़ थक-सी रही है क्योंकि जय-जयकार धीमी पड़ रही है—शायद मैं थक गया हूं। नारों की आवाजें कड़वी लग रही हैं शायद मैं कड़वा हो गया हू। मुझे सब बेकार का शोर लगता है—शायद मेरी ही अनुभूति की ताकत बेकार हो गई है।

अर्थी चल रही है। भीड़ चल रही है। मैं चल रहा हूं। मुझसे एक आदमी आकर कहता है—'भाई साहब अर्थी के आगे वह दो आदमी और उनके साथी शहर

लेकर चल र हैं, जिनको आपने ा ा किया था।'

मुझे झटका-सा लगता है। ऐसा महसूस होता है जैसे मेरे सीने पर किसी ने पत्थर खींच के मार दिया हो।

'वह लोग पार्टी के नारे लगा रहे हैं' वही व्यक्ति दुबारा मुझसे कहता है।

'क्या किया जा सकता है।' मैं उससे कह देता हू लेकिन मुझमें गुस्सा, घृणा और कड़वाहट एक साथ भर जाती है। दिल में आता है आगे तक जाऊं और उस आदमी के तमाचे मार कर कहू, 'कमीने तुम्हें लाश से भी फायदा उठाते हुए शर्म नहीं महसूस हुई।' लेकिन अपने को जब्त करता हू। गुस्से को इस तरह बैठाता हू कि इस शहर में वही कब बच सका जिसकी अर्थी का राजनीतिक फायदा उठाया जा रहा है। उसकी आत्मा को भी तो स्याह कर दिया गया था।

अर्थी घाट तक आ गई। वह लोग बाजार पार करने के बाद लौट गए।

चिता पहले से ही तैयार की जा चुकी है। शव को चिता पर रख दिया गया है। मुझे एक तसल्ली है कि वह लोग चले गए हैं, कम से कम उसकी राख पर तो उनकी छाया नहीं पड़ेगी।

बेटे ने आग देदी है। लपटें ऊपर-ऊपर उठ रही हैं। मुझे अब महसूस हो रहा है कि मेरा दिल भर आया है। मैं उसकी चिता और उसमें से उठती लपटों को देख रहा हू। एकाएक मेरे रुके हुए आसू बह पड़ते हैं। आसूओं का तार बध जाता है। चिता धू-धू करके जलती जा रही है और मेरी आखों से आसू बहते जा रहे है। और उसका अंत होता जा रहा है।

●●●

ईसर

० हबीब कैफी

०००

नर्स ने नीडल नस में पिरोने के बाद ईसर की ओर देखा। उसने गहरी काली दाढ़ी में मुसकराने की कोशिश की। नर्स बोतल की ओर देखने लगी थी। सहज-सा ईसर घूमते हुए छत-पंखे की ओर देखने लगा।

'हिलो मत।' नर्स बोली।

पंखा उसी तरह घूम रहा था। ईसर ने एक बार और नर्स की ओर देखा। वह पूर्ववत् उनके पास खड़ी थी। ईसर इस नर्स की तुलना अपनी ईसरी से करने लगा। दोनों में ज्यादा फ़र्क़ नहीं है, उसने सोचा, रंग दोनों का एक जैसा है। यह बस जरा मोटी है। सफेद कपड़ों में है। घड़ी बांधे हुए है। नर्स है !···ईसरी ने चार बच्चे जने हैं। दुबली तो होगी ही। वह नर्स नहीं है। इस समय···

'कहा न, हिलो मत !' नर्स फिर बोली।

ईसर फिर न हिलने का ध्यान रखने लगा। अब वह अपने रक्त को लेकर विचार करने लगा था। किसके शरीर में जाएगा ? होगा कोई रईस। खून कीमती है। अबस दाम मिलेंगे। खानदानी खून है। यानी मैं खानदानी हूं ! अच्छे घर का !...वह अनायास मुस्करा दिया। वह रंगे हुए अखबारों से बनी हुई छोटी-छोटी रंगीन झंडियां देखने लगा था। काच के छोटे-छोटे रंगीन मोतियों की मालाएं और लम्बी-लम्बी काली डोरियां भी उसके हाथ में आ गई थीं।···उसे लगने लगा कि वह थकता जा रहा है।

'कित्ता खून लोगी ?' घबरा कर उसने नर्स से पूछा।

'जितना बोला है।' कलाई घड़ी देखते हुए नर्स ने कहा।

ईसर ने फिर छत-पंखे पर नजरें गड़ा दीं। दाम तो *मिलेंगे ही;* उसने खुद को तसल्ली दी।

'क्या लेगी ?'

जवाब में लड़की ने सिर्फ़ पूछने वाले को घूर कर देखा था। बात उस दिन आई-गई हो गई। किन्तु बाद में पूछने वाला ये दो शब्द उलट-पुलट कर उसके आगे जब-तब उगलने का आदी हो गया। वह इससे आजिज आ गयी थी।

'जान ले लूंगी !'...तंग आई हुई पलट कर एक बार वह बोल ही गई। दरअसल वह उसे फोहश गालियां बक देना चाह रही थी।

पूछने वाला सिनेमा का आखरी शो देख कर लौटा था। यह सर्दियों की शुरुआत थी। स्टेशन के इधर फुटपाथ पर बने रैन-बसेरे में लोग दुबके पड़े थे। ओलपिक सिनेमा की भीड़ घरों को जा चुकी थी। अब सड़कें एकदम सूनी थी। दूर कुत्ते भूक रहे थे। उसके दिमाग़ में सिनेमा के उत्तेजक दृश्य घूम रहे थे। बीड़ी को चप्पल तले रगड़ कर वह उसकी ओर बढ़ा। लड़की ने प्रतिरोध किया। लेकिन उसका कंठ जैसे अवरुद्ध हो गया था। मुंह से एक शब्द भी नही फूटा। चेहरे, बांहों और बालों वाले सीने पर तेज नाखूनों की खरोंचें अवश्य पड़ गई थी।…और वह लड़की से औरत बना दी गई।

ईसर ने अचानक राहत महसूस की। नर्स ने नीडल निकाल कर उसकी बांह मोड़ दी थी।

'लेटे रहो।' वह उठने को हुआ तो नर्स ने कहा।

सफेद बिस्तर पर वह लेटा रहा। नर्स नीडल, नली और बोतल आदि समेट कर फौरन चली गयी। कमरे में ईसर अकेला रह गया।

× × ×

चेहरे पर कुछ खास खरोंचें नही आई थी। रोए वाले सीने पर भी नही। दाहिने हाथ की मछली पर अलबत्ता नाखून गहरा लगा था। लेकिन उसे इसकी चिन्ता न थी। कोई हंगामा नही हुआ। दिन अजीब खुशी और पछतावे की भूल-भुलैयों में कट गया। वह पूरा दिन इधर-उधर फिरता रहा था। चाहते हुए भी वह रैन-बसेरे की तरफ नही गया। उसे काल्पनिक बवंडर का खौफ था।

काफी रात गए जब सिनेमा का पिछला शो छूट गया और सड़कें सूनी हो गई तो उसने उधर का रुख किया। उम्मीद के खिलाफ रैन-बसेरे के पास उसे वह जागती हुई मिली। झिझकता हुआ वह उसके निकट गया।

'तू जाग रही है री ?' बीडी का घुट लेकर उसने उसे सम्बोधित किया।

जवाब में उसने अंधेरे में उसके आगे सिर उठाया। कुछ क्षण यूं ही बीत गए।

'गुस्सा है मुझ पर ?' वह फिर बोला।

इस बार उसने सिर झुका लिया। वह धीरे से सिसक उठी। बीडी फेंक कर उसने उसे बेझिझक अपनी उत्तेजना रहित बाहों में समेट लिया।

'मेरे पास अब क्या है ?' आंसुओं के बीच वह बोली।

'देख, तेरे पास सब कुछ है।' भावुकता के आवेश में उसने उसके आंसू पोंछते हुए कहा, 'मैं ईसर, तू मेरी ईसरी ! कसम से जो मैं झूठ कहूं !…'

और वह लड़की से औरत बना देने वाले ईसर की ईसरी बन गई। फुटपाथी जीवन में यह कोई अजीब बात नही हुई थी। किसी को इस पर एतराज भी नही था। यहां ज्यादातर गृहस्थियां इसी तरह की सहज स्वीकृतियों से वजूद में आई थीं।

× × ×

दो टिकटों पर अंगूठा टेकने के बाद ईसर को रुपये थमा दिए गए। उसने वहीं खड़े-खड़े रुपये गिने। बयालीस थे।

'जोगिये ने तो बोला था कि डबल मिलेंगे !' उसने क्लर्क से कहा।

'डबल ही तो है !'''डबल का मतलब पूरे ग्यारह ज्यादा !'

'जी समझा' की मुद्रा बनाकर ईसर ने हसरत से सिमटे हुए रजिस्टर की ओर देखा। डबल का मतलब डबल होता है, लेकिन यहा तो पूरे बीस रुपये कम है ! यह कैसी साजिश है ? कौन-कौन इसमे शरीक है ? ईसर ने साफ-साफ महसूस किया कि उसे धोखा दिया जा रहा है। वह किसी पढे-लिखे से रजिस्टर मे लिखी रकम की तसदीक चाहने लगा। लेकिन वह यह न कर सका। स्वय के बे-पढे होने का अफसोस करता हुआ वह सड़क पर आ गया।

थका-थका होने के बावजूद भी ईसर फुटपाथ पर तेज़ चाल चलने लगा। उसकी आखो मे बढे पेट वाली इकहरे बदन की ईसरी तैरने लगी थी। यह बच्चा वह आराम से जन दे। बस। फिर तो रोक का प्रबन्ध कर लूगा। जी जान से मिहनत करूगा। जोवन बनाऊगा। दारू बन्द कर दूगा।'''बहुत ख्याल करती है मेरा। ऐसी हालत मे भी झडियां और मालाए बनाती रही। मैं ही बेचने मे कोताही करता रहा। अब ऐसा नही होगा। खूब सारा माल ला दूगा। खूब बेचूगा। इस दफा अब से गुब्बारे भी। और नही झल्ली ही ढोऊगा। सुन ले, भगवानजी ! उसे बहुत प्रेम दूगा। बच्चों का ख्याल करूगा !'''सोच-विचार और इसी तरह के निश्चय करता हुआ वह टेशन पर आ गया।

टेशन पर ईसर को एक ओर पाच-सात आकृतिया जमी हुई दिखी। वे लोग दानो पर दाव लगा रहे थे। ईसर के कदम रुक गए। खेल लिया जाए ?

पहले दाव मे ईसर ने तेरह रुपये बनाए। रुपये समेटने के बाद उसने एक जोरदार कहकहा लगाया। दूसरे दाव मे उसने छह रुपये गवाए। सहज-सा होता हुआ वह हाथीदांत के छोटे-छोटे दानो को घूरने लगा। बाजी उलटी चलती गई। उसकी जेब में कुल दो रुपये रह गए। तैश मे आकर उसने आखरी दांव लगा दिया। वह हार गया।

कगला ईसर कुछ देर तक वहा यू ही जमा रहा। वह पछताने लगा था। उसे शर्म भी महसूस होने लगी थी। निरीह भाव से वह वहां खेलने वालो को देखने लगा।

'भाई लोगो !'''मुझे मेरे रुपये वापस कर दो !' हारे हुए ईसर ने अचानक एक साथ सब खेलने वालो को सम्बोधित किया, 'मैं तो मजाक मे बैठ गया था।'

'प्यारे ! जीतने वाले भी मजाक में जीते है।' दाने फेंकते हुए एक बोला।

'मैं कसम से कहता हू, अपना खून बेच कर रुपये लाया था !'''बीबी बच्चा जनने वाली है ! बच्चे भूखे हैं !'

'अब उन सबको भी बेच दे !' एक ने व्यग किया।

'रुपये तुझसे किसी ने छीने नहीं। खेलने के लिए तुझे किसी ने बुलाया नहीं। फिर ?' एक अन्य बोल पडा।

'अब नही खेलूगा !' ईसर गिड़गिड़ाया।

अरे यह बदमाशी कर रहा है !'

'तुम मेरे साथ चल कर देख लो…ज्यादा दूर नहीं है। मैं झूठ नहीं कहता।'

'क्या दम है ?…हम क्या नहीं है ?'

'मैं…मैं पुलिस में जाकर कह दूंगा !'

खीझे हुए व्यक्ति ने बगल से चाबुक निकाल कर ईसर के मुंह पर मूत दिया। ईसर की आंखों में खून-से लाल उठे। वह पलट कर भिड़ जाने का इरादा करने लगा, मगर जल्दी ही उसने महसूस किया कि वह ऐसा नहीं कर पाएगा।

'अब तो जाने से ! बुला पुलिस को !'

'नहीं नहीं, मैं कहीं नहीं जाऊंगा !' पिटे हुए ईसर ने अपना दाहिना गाल और ललाट सहलाते हुए आदमी से कहा, 'तुम मेरी सुनो, बच्चे भूखे हैं !'

'और भी कुछ चाहिए क्या ?'

'ले मर !' कह कर सैलानियों में से एक ने दो रुपये का नोट ईसर की ओर फेंक दिया।

इतना-सा नोट लेकर वह वहां से उठ गया।

×

एक ही घूंट में दारू का गिलास खाली करने के बाद बीड़ी सुलगा कर ईसर ने चोट वाले स्थान को सहलाया। अब क्या होगा ? ईसरी मर न गई हो ? शीघ्र ही उसने दूर आकाश में बहुत-से गुब्बार उड़ते हुए देखे। कागज की रंगीन झंडियां और मोतियों की मालाएं उससे दूर हो गईं। उसने माहौल का जायजा लिया। उसी के तबके के कुछ लोग वहां बैठे हुए पी रहे थे।

'मैं बुरा हूं…बुरा !' कह कर उसने तीन-चार चांटे अपने गालों पर जमा लिए। अन्य पीने वाले उसकी ओर देखने लगे थे।

'ज्यादा पी गया है !' एक पीने वाले ने ईसर की ओर इशारा करके अपने साथी से कहा।

ईसर वहां से उठ गया। दरवाजे के पास आकर उसने स्टूल पर बैठे हुए व्यक्ति की ओर देखा। अचानक एक ही झटके में ईसर ने हाथ बढ़ा कर बेंच से उसका गिलास उठा लिया। सारी शराब गटकने के बाद गिलास रख कर वह फ़ौरन सड़क पर आ गया। बहुत-सी मिली-जुली आवाजें उसके कानों से टकराई थीं, लेकिन उसने उधर ध्यान नहीं दिया।

डगमगाता हुआ वह चलने की कोशिश करने लगा। टेशन के सामने लगे आधुनिक नगर के निर्माता राजा के क़ीमती स्टेच्यू के जंगले के पास आकर वह बैठ गया।

'स्टेच्यू तोड़ दूंगा !…धातु के रुपये बना कर ईसरी को बचाऊंगा !…बच्चों को पा लूंगा !…'गुनगुनाता हुआ-सा वह वहीं पसर गया।

०००

'तस्मै गुरुवे नमः'

◦ दिलीप सिंह चौहान

◦◦◦

'अरे ! ये गये नहीं !' उन्हें अपने घर की ओर आते देख मेरे मस्तिष्क में विस्मययुक्त प्रश्नचिह्न बन गया। मेरे मकान के द्वार के ठीक सामने दूर तक सीधी गली में महाशय अपनी एक लगड़ाती टांग को फेंकते हुए आ रहे थे, जिससे धोती का पल्ला हर कदम पर उड़ता नज़र आ रहा था। उन्हें देख सहसा अतीत में प्रवेश करता हूं—

'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वराय ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नम ॥'

उस दिन इन्हीं महाशय ने यह श्लोक भाषण के प्रारंभ में कितनी तन्मयता से उच्चारित किया था और फिर धारावाहिक वह भाषण झाड़ा वह भाषण झाड़ा कि छात्र मंत्रमुग्ध होकर कम से कम उस दिन तो गुरु द्रोणाचार्य के एकलव्य बन ही गये थे। धोती और झब्बा, कंधों पर दुपट्टा और हाथ जोड़कर श्लोक के अंतिम शब्दों के साथ जब अध्यक्षजी को नमन किया तो ऐसा प्रतीत हुआ कि आप ज्ञान और कर्म के साक्षात् पुतले ही हैं।

अध्यक्ष जी के एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे इन्हीं के मित्र सुरेशजी। जिनको पड़-चवकर डालकर विद्यालय स्तर पर उसी दिन सम्मानित करवाया था। वह शिक्षक-दिवस था और ये शिक्षक थे ही। फिर कमी किस बात की। अपनी डफली और अपना ही राग। और फिर गैरों से तो इसका वास्ता ही क्या? और हां भी क्यों? सच तो यह है कि जब तक ऐसे पूज्य गुरुदेव इस भारतभूमि पर विद्यमान हैं तब तक तो किसी और की आवश्यकता नहीं।

वैसे श्लोक का शब्द-शब्द प्रभावपूर्ण है जो सहज ही गुलाब के फूल की तरह किसी को आकर्षित कर लेता है, मगर आज इन हजरत के दर्शन कर मैं भी अपने भाग्य को धन्य मानता हूं। अब मेरा सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित हो रहा है प्रथम पंक्ति से हटकर मात्र अंतिम पंक्ति के उत्तरार्द्ध अंश पर। ठीक वैसे ही जैसे किसी मेले में गाय-खरीददार की दृष्टि अमुक दुबली-पतली और ऊंचे-नीचे सींगों वाली गायों से हटकर टिक जाती है— एक हृष्ट-पुष्ट झूमते स्तनों वाली कामधेनु पर। मेरे कानों में रह-रहकर [illegible] की आरती के घंटों की झनकार की तरह गूंजने लगे हैं मात्र ये ही शब्द— 'तस्मै गुरुवे नम ··· तस्मै गुरुवे नम ··· तस्मै गुरुवे नम' और मैं इनको आता देख [illegible] अनुभव [illegible] में 'हां' में बोल उठता हूं। 'हां, तस्मै गुरुवे नम।'

मैं चौकन्ना हो जाता हू, क्योंकि वे अब नजदीक आ गये हैं। मेरा हाथ मेरा कृत्रिम रौब कायम रखने में उतावले हो उठते हैं—झाड़ू को पलग से यथास्थान रखते हैं। अस्तव्यस्त पुस्तकें एक बार फिर एक दूसरे पर सवार हो जाती हैं। कुर्सी नगी हो जाती है। और उन पर की पोशाकों को खूंटियों पर सूली दे दी जाती है। मेरे शरीर की राष्ट्रीय पोशाक, जिसे मैं इसी नाम से सबोधित किया करता हू मैली चड्डी और मैला बनियान ढकने का अब समय ही कहा रहा ? क्योंकि—

—नमस्ते साहब !

—नमस्ते ! आइए महेश जी ! आज घर पर कैसे कष्ट किया ?

मैंने औपचारिकता पूरी करते हुए कहा और स्वागत के रूप में कृत्रिम हँसी का सहारा लिया।

—'वैसे ही आपके दर्शन करने के लिए।'

शब्द सुनकर ऐसा लगा मानो औपचारिकता की प्रतियोगिता में मैं भी मात खा गया था।

—'तो भी ऽऽ ?'''अरे हा, मगर आप यहा कैसे ?'—पूछते हुए मैंने अपने चेहरे पर वर्षा के बुलबुलों की तरह क्षणिक विस्मय का मुखौटा चढ़ा लिया था।

—'मेरे घर की पुताई-वुताई करनी है, इसलिए मैं गया नही। वैसे जाना कोई जरूरी भी नही था।'

—'तब तो आपने अच्छा किया। आपके सस्कृत का कोर्स भी बहुत बाकी है। बोर्ड की परीक्षायें भी नजदीक हैं।'—मैंने जानते हुए भी बात को फेरने का प्रयास किया।

—'नही साहब ! मैंने पाच रुपये सुरेशजी के साथ जयपुर भेज दिये हैं। इसलिए वहा से मेरी ऑन-ड्यूटी आ जायेगी।'—उनके चेहरे पर सहज ही लज्जा का मुखौटा चढ़ गया था और शायद वह अब मेरे सामने इतना वजनी बनता जा रहा था कि सभवतया उसी के भार से दबने लगे थे और राहत के लिए बार-बार अपनी जगह से हिलने लगे थे। हाथ-पाव भी उनके नही चाहने पर भी कुछ सहज क्रियाओं में व्यस्त थे।

—'लेकिन शायद आपने तो प्रार्थना-पत्र में कोटा वाले अधिवेशन में भाग लेने को लिखा था !' मैंने जरा अफसरी मूड बनाते हुए तालाब में एक पत्थर फेंका और लहरों को गिनने लगा।

—'वैसे मैं हू तो जयपुर वाले शिक्षक सघ के गुट में ही। मगर अपने वो आमेटा जी है न, वे कोटा के पास के ही रहने वाले हैं और वे जा रहे थे सो मैंने पाच रुपये उनके साथ भेज ऑन-ड्यूटी मगाना चाहा था। मगर भले आदमी ने अपने स्वय के पाच रुपये भी किसी और के साथ जयपुर वाले अधिवेशन में भेज दिए। कैसे-कैसे आदमी हैं साहब, जबान की कोई 'वल्यू' नहीं'—मैं बीच में ही लटक जाता। कहते हुए उन्होंने मुझे भी अपनी पतवार में बैठाने का प्रयास किया।

—'तो क्या पाच रुपये भेजने मात्र से ऑन-ड्यूटी आ जाती है ?'

—'नही तो कौन ठाले बैठे है साहब इनके अधिवेशनो मे जाने के लिए। पाँच रुपये पजीकरण शुल्क की एवज में एक दिन तो जाने की यात्रा का, एक दिन आने का और तो दिन अधिवेशन के। पूरे चार दिनो की ऑन-ड्यूटी आ जाती है। नही तो कौन जावे उनके अधिवेशनों में किराया काटकर!' उन्होंने हाथ फेंकते हुए हँसी के साथ कहा।

—'तो फिर सुरेशजी कैसे गये?' मैंने तर्क प्रस्तुत किया।

—'असली बात यह है कि वे तो वही के रहने वाले है फिर उस गुट के जिला मंत्री भी हैं और सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि 15 से 30 नवम्बर तक का साथ में मध्यावधि अवकाश पड रहा है उन्हें घर तो जाना ही था। फिर क्या, एक पंथ दोऊ काज, गन्नो की भाडी और पोखरजी का मेला।'—वे फिर हँसने लगे।

—'नही, नही, सभी लोग ऐसे थोड़े ही हैं? मैंने दुर्गंधयुक्त मलवे में एक फावड़ा और मारा।

—'मैं सच कहता हू गुरुदेव, यदि ये सघ के पदाधिकारी आगे-पीछे छुट्टिया नहीं मिलावें न, तो एक भी शिक्षक इनके अधिवेशनों मे नही जाय। मैं इके की चोट के साथ कह सकता हू।'—कहते हुए धम्म से एक मुक्का मेरी गरीब टेबल पर दे मारा। मेरा ध्यान प्लाइवुड की एकमात्र टेबल की सहानुभूति मे बट गया। इतने मे एक पत्रावली उन्होंने टेबल पर सरकाते हुए कहा—'इसकी ट्रू कॉपी' पर हस्ताक्षर करने है।'

—'क्या है?' मैंने पत्रावली देखते हुए पूछा।

—'मेडिकल सर्टिफिकेट है।' कहते हुए कुछ हिले।

मैंने अपना चश्मा चढ़ाया और पढ़ने लगा। ज्यो-ज्यों पढ़ता हू मेरे ऊपर भार पड़ता महसूस हो रहा था। पत्र छोटा-सा होने पर भी द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ता ही जा रहा था। भौतिक दृष्टि विगत घटनाओ के तानो-बानों मे उलझ-उलझ कर पुनः ऊपर की पंक्ति को समझने के लिए जा टिकती और वह पत्र समाप्त ही नही हो पा रहा था।

—'कोई एक वर्ष पूर्व सुरेशजी का तुरन्त प्रभाव से स्थानान्तर का आदेश आया था। आया क्या था, मैंने ही भरसक प्रयास के बाद कोई जुगाड़ बिठाया था और इस गंदी मछली को निकाल फिकवाया था। इसमें मेरा भी क्या दोष था? सरकार वेतन काम करने का देती है न कि नेतागिरी करने का। आखिर मे अधिक स्टाफ को मेरे विरुद्ध कर दिया था इस कमीने ने। और बात एक मामूली थी। कैसा बोला था सुरेश स्टाफ के सामने—

—'गुरुजी, छात्रावास का चार्ज अब किसका दिया रहा है?'

—'श्री शर्माजी को।'

—'यह उचित नहीं है।'

—'यह अनुचित भी तो नहीं है।'

—'है।'

—'कैसे ?'

—'वे थर्ड ग्रेड मे है।'

—'लेकिन काम फर्स्ट-ग्रेड मे कम नही।'

—'तो क्या हुआ।'

—'यही की की काम पूजा।'

—'हम वरिष्ठ हैं'।

—'सो तो ग्रेड उठा रहे हो।'

—'उनका हक नही है।'

—'यह मेरे सोचने की बात है।'

—'कहीं उड जाओगे।'

—'तो भी जमीन पर गिरेंगे।'

—'देख लेंगे।'

—'अच्छी तरह से नम्बरी चश्मे लगाकर देखना।'

—'क्योंकि वह आपका चमचा है।'

—'हा, स्टील का।' मैने भी खरा-खरा जवाब दे दिया था।' चमचा है'— कैसे छिछले विचार है। बिचारे को बोर्ड की कक्षा देनी पडी तो सी और अंग्रेजी जैसे विषय का शतप्रतिशत रिजल्ट दिया। विद्यालय के हर कार्य मे हाथ बटाता है। आधी रात मे भी बीबी-बच्चो को छोड भागा हुआ विद्यालय मे आता है। इसलिए चमचा है। है तो है। जाओ करना हो सो कर लो।' जब स्थानान्तर का आदेश आया तो पट्ठा बीमारी का अवकाश लेकर बैठ गया।—मै प्रति पढता जा रहा था और महेशजी मेरा चेहरा।

—'यह क्या सुरेशजी का है ?'—मैंने प्रेष को पीछे ढकेलते हुए यो ही प्रश्न किया।

—'जी हा।'

—'इस 'जी हा' मे जीत की बिसिल की लम्बी ध्वनि आ रही थी क्योंकि उस आदेश को निरस्त कराने मे इस महाशय का ही हाथ था। पहले तो उसने श्रीवास्तव वाले शिक्षक सघ के गुट का दरवाजा खटखटाया। लेकिन शर्मा भी इसी गुट का सक्रिय कार्यकर्त्ता था। इसीलिए उनकी दाल गली नही, तो खट से वर्मा वाले शिक्षक-सघ के गुट की शरण ली। उनको क्या था, अधे को आख मिली। अपनी सख्या वृद्धि के स्वार्थ से स्वागत हुआ और बना दिया जिला मत्री। अब क्या था ? स्थानान्तर निरस्त और बैठे रहे जिला मुख्यालय पर। जिलामत्री और अध्यक्ष का स्थानान्तर नही हो सकता। क्योकि उन्हे जिला शिक्षा अधिकारी जी से सप्ताह मे एक बार सम्पर्क करना होता है। शिक्षको की समस्याए निबटवानी पडती है। यह सरकार की ओर से प्रदत्त कानूनी सुविधा है। अब क्या था ! उसे तो यह ब्रह्मास्त्र प्राप्त हो गया। इसका मतलब तो यह हुआ कि यदि किसी का जिला मुख्यालय पर रहने का चाव है, तो खोल दे एक शाखा

शिक्षक-संघ और कम्पीटिशन में विजय के लिए कर दे अधिवेशनों में पंजीकरण-शुल्क एक रुपया। फिर धुंआधार प्रचार करना शुरू करें—'रुपये की चार ऑन-ड्यूटी''' रुपये की चार'। धड़ाधड़ गुरुदेव उसके अधिवेशन में आंख मीचकर नाक रगड़ते हुए चले जाएंगे।'

—'इसकी डु्-कॉपी की क्या आवश्यकता है?' मैंने जानना चाहा।

—'यों ही ऽऽ पड़ी है।'—अलमस्ताना मूड का जवाब था। मैं समझ गया था कि इन्हें भय है कि मैं कहीं मेडिकल गायब नहीं कर दूं। इसलिए मेरे ही हस्ताक्षर की डु्-कापी ये अपने पास रखना चाहते हैं। लेकिन ऐसा तुच्छ काम मैं नहीं करने वाला था।—'मेडिकल-लीव' भी मैं तो स्वीकृत कर देता मगर स्थानान्तर आदेश आते ही बीमार कैसे पड़ गया? और बीमार पड़ गया तो रोजाना सायं साढ़े चार बजे ठीक कैसे हो जाता है? जो मेरी नजरों के सामने वालीबॉल के धड़ाक-धड़ाक समैसें मारता। इसीलिए मुझे कहना पड़ा था—

—'क्योंजी, आप बीमार हैं तो खेल कैसे रहे हैं?'

—'बीमार तो कागजों में हूं गुरुजी!'

—'मैं आपका मेडिकल चेलेन्ज करूंगा।'

—'यह भी कर लेता।'

और आज यह मेडिकल बोर्ड का प्रमाण-पत्र भी ले आया है। अजीब बात है। मैं देख रहा था कि सुरेश स्वस्थ है मगर डॉक्टर कहते हैं—यह 'सीरियस' है, इसे 15 दिनों के सख्त विश्राम की आवश्यकता है।

—'यह लो।'—कहते हुए मैंने हस्ताक्षर कर पत्रावली उन्हें लौटा दी।

—'आपको डिस्टर्ब किया।' नमस्ते! कहते हुए चल दिए। नमस्ते में अहम् की बू आ रही थी। मैंने घड़ी देखी। कपड़े पहिने और विद्यालय की ओर चल दिया।

टन—टन—टन—सूचना-घंटी बजी। फिर दूसरी—और छात्र पवित्र गुरु-गंगा में स्नान करने अपनी पोथियों के बोझ से लदे सरस्वती के मंदिर में प्रवेश करने लगे। प्रार्थना-सभा जमी। आज छात्रों की उपस्थिति अच्छी थी, लेकिन पढ़ाने वाला मात्र मैं ही था। प्रार्थना-सभा की समाप्ति पर मैंने छात्रों को स्थिति से अवगत कराते हुए कहा कि—'सभी शिक्षक दो स्थानों में शिक्षक-संघ के अधिवेशन में गये हुए हैं। सरकार ने उन्हें भाग लेने का अधिकार दे रखा है।'

ऐसा कह चुकने के बाद मैंने यहीं उचित समझा कि छात्रों को यहीं पर नैतिक शिक्षा पर ही कुछ बता देना चाहिए। अन्यथा बताए खाली रहेंगी और शोर होगा। इसलिए मैंने अपना प्रवचन प्रारंभ करने हेतु पहले विषय बताना शुरू किया—

—'आपको ज्ञात होगा, सरकार ने स्कूलों में नैतिक शिक्षा देने के आदेश प्रसारित किए हैं। इसकी पालना में हमारे गुरुजन रोजाना प्रार्थना में 'नैतिकता' विषय पर प्रवचन देते रहे हैं। मैं भी आज आपको इसी विषय पर कुछ बताऊंगा। आप अपने जीवन में इसका पालन करें।'

इसी बीच कक्षा दस का रमेश उठ खड़ा हुआ और बोला—

—'सर, भटनागर मास्ट साब को तो मैंने अभी घर पर ताश खेलते देखा है।'

फिर क्या था! एक-एक कर उठते गये और बोलने लगे—

—'त्रिपाठीजी ने तो एक घंटे पूर्व मुझसे पान-वाले के यहां से सिगरेट मंगवाई थी।'

—'चोखड़ियाजी और गुप्ताजी तो बाग में पकौड़े निकालकर खा रहे हैं।'

मैं चुपचाप गरम-गरम शीशे को कान में उंडेलवाता रहा और भाषण स्थगित कर एक बार मन ही मन गुनगुनाया—'तस्मै गुरुवे नम' ''और ऑफिस में मुंह छिपाकर बैठ गया।

०००

अपराधगाह

० पार्श्वेन्द्र शर्मा चन्द्र

०००

वह बहुत हांफ रहा है। उसकी सांस धोंकनी-सी चल रही है। आकृति पर रंग बिरंगा आतंक है जो कभी बिल्ली की खाल की तरह मुलायम और कभी भैंस की सूखी खाल की तरह कठोर लगता है।

वह दौड़ रहा है। निरन्तर और अनवरत। एक दिन से नहीं, एक सप्ताह से···एक माह से···एक साल से और एक युग से। उसे खुद को मालूम नहीं कि वह कब से दौड़ रहा है? जितनी बार उससे प्रश्न किया जाता है, वह उतनी ही बार नया-नया उत्तर देता है। इसलिए कई लोग उसे मानसिक रूप से बीमार कहते हैं।

मगर उसे विश्वास है कि कोई उसका पीछा कर रहा है। उसके अस्तित्व को अनस्तित्व करने के फिराक में है। उसने कई बार हांफतेहांफते बताया भी है—'कोई मेरी हत्या करना चाहता है। मुझे छूरे से कोंचना चाहता है। मुझे गोली से उड़ाना चाहता है। मेरा लाठियों से कुचूमर निकालना चाहता है···एक बार तो दो आदमियों ने मुझे फांसी देनी चाही।'···

यह उसका प्रलाप है या सच्चाई, यह तो वह जाने, पर वह लगातार दौड़ता जा रहा है।

सुबह उसे खून से नहाई हुई लगी। बैरक के आगे खून के धब्बे फैले हुए थे। पहरेदार अपनी बीट पर सहज रूप से चक्कर काट रहा था। ये खून के छींटे किस इंसान के थे, उसे मालूम नहीं। हालांकि सवालों के बवंडर निरन्तर उसके भीतर उठ रहे थे और उसे परेशान कर रहे थे पर उसमें पहरेदार लाखनसिंह को पूछने की हिम्मत एकाएक नहीं हुई। वह लाखन से जरा घबराता था। लाखन की मोटी-मोटी बाहर निकलती-सी हिंस्र आंखें, घुटा हुआ सिर···बलदार मूछें···हट्टा-कट्टा शरीर उसमें दहशत पैदा करते थे। उसके जूते हर समय चरमराते रहते थे। वह हाथ में लाठी लिए एक क्रूर मुस्कान अपने भद्दे होंठों पर दौड़ाता रहता था। उसका सम्पुट था—'ओ बे चोटी की औलाद!' फिर वह कहता—'लाखन की चुटकियों को देख रहा है, एक पल में मसल दूंगा। चीख भी नहीं पायेगा।'

वह कहां से अधकचरी ज्योतिष विद्या सीख आया था कि उसने लाखन के उंगलियों व अंगूठे की बनावट और मस्तिष्क-रेखा को चक्र की ओर ज्यादा मुड़े हुए देख लिया था, बस उसका पक्का यकीन हो गया कि यह आदमी अपराधी है, पागल है,

असामान्य है। यदि यह हवलदार नहीं होता तो कोई खूंखार डाकू होता। खून से खेलने वाला डाकू!

सहसा उसका ध्यान लाखन की ओर गया। लाखन खून के धब्बों पर बड़ी निर्ममता से चल रहा था। काफी प्रसन्न मुद्रा में।

आह! यह कितना क्रूर इन्सान है!

तभी लाखन का कड़वा स्वर गूंजा—'ओ बे चीटी की औलाद, क्या टुकुर-टुकुर मुझे निहार रहा है? साले की आंखें बाहर निकाल लूंगा। ''जानता नहीं मैं लाखन हूं'''मेरे जूतों की चरमराहट से जेल के कैदी ही नहीं, परिन्दे भी सहम जाते हैं।'

वह नया-नया आया था। युवक था। हालांकि वह भ्रष्टाचार-विरोधी जुलूस में शामिल होने के अपराध तहत जेल में था।

उसने गम्भीर होकर प्रशंसात्मक स्वर में कहा—'लाखन साहब! दरअसल आप ही 'असली जेलर' हैं।'

वह जानता था कि कम्पाउन्डर को डाक्टर कहने पर वह जरूरत से ज्यादा खुश व उदार हो जाता है। लाखन भी इस वाक्य से पिघलता हुआ नजर आया।

लाखन दंभ से अपनी मूछों पर ताव देकर बोला—'जेल में कौन क्या है यह तो कैदी ही जानते हैं। तुम बहुत बुद्धिमान हो इसलिए जल्दी समझ गए।'

'तो जेलर साहब! आप बता सकते हैं कि'''?' वह कहते-कहते रुक गया।

लाखन नजदीक आया। उसकी आकृति निर्ममता के रंग से पुत गई। वह ऐसे बोला जैसे गहरे कुएं में बोल रहा है, 'मैं सब कुछ बता सकता हूं!'

लाखन की मोटी-मोटी आंखें उसे फैलती-सी लगीं। वे इतना विस्तार पा गयीं मानो उनमें एक नहीं, कई लाखन उग आए हों! लखनों की भीड़ चल रही हो! अनेक चेहरे वाले लाखन!

'ओ बे चीटी की औलाद, क्या पूछना चाहता है?' उसने ठक से लाठी को जमीन पर पटका।

'जेलर साहब, ये खून के छींटे किसके हैं? रात को तो ये नहीं थे।'

वह अट्टहास कर उठा। उसका बदन थर्रा रहा था। उसका थोड़ा-सा निकला हुआ पेट स्प्रिंग के खिलौने की तरह फुद्-फुद् नाच रहा था।

अपने को संभालकर लाखन बोला—'ओ बे चीटी की औलाद, 'सिक्रेट' पूछना चाहता है? मैं गधे की औलाद थोड़े ही हूं कि अपनी जेल के 'सिक्रेट' बता दूंगा। देख बे क्रान्तिकारी की औलाद'''ये जेल है'''अपराधियों को सही रास्ते पर लाने की जगह'''अरे! इसे तीरथ कहो'''मंदिर'' सुधार-घर'''! बड़े-बड़े चोर, उचक्के, उठाईगीर, डाकू-लुटेरे'' बलात्कारी और अपहरणकर्ता यहां आते हैं और लाखन उन्हें सही रास्ते पर ला देता है'''कैसे सही रास्ते पर ला देता है यह मैं और जेलर साहब ही जानते हैं। अलग-अलग अपराधियों के लिए अलग-अलग नुस्खे। नुस्खों के नम्बर भी हैं। एक से लेकर एक सौ पचपन तक।'''पहले एक सौ चालीस थे।'' अब एक और बा

गया। '''फार्मूला नम्बर एक सौ पचपन'''बड़ा ही खतरनाक है यह फार्मूला।''' बताऊ ?' वह फस् से हँसा। अपने स्वर को लम्बा करते हुए बोला—'साला मैं कोई गधा हू जो दफ्तर के 'सिकरेट' बातो-बातो मे ही बता दूगा !'

वह समझ गया कि यह गधा तो नहीं पर अव्वल दर्जे का मूर्ख है। वह झट से बोला—'जेलर साहब (लाखन साहब), आप गधे तो नहीं हैं, पर डरपोक जरूर हैं।'

'चीटी की औलाद ! मुझे डरपोक कहता है ! साले को बीच मे से चीरकर एक टुकड़ा इधर और एक टुकड़ा उधर फेंक दूगा।'

'फिर बताइए न फार्मूला नबर एक सौ पचपन ! देखू आपकी मर्दानगी !'

वह वाक्य उगलता हुआ बोला—'गुडो को अंधा करना'''मैंने कइयो की आखें फोड़ डाली है। देखो, चीटी की औलाद, यह फार्मूला थोड़ा कष्टदायक है, पर इसके बाद अपराधी न तो छुरा मार सकता है और न किसी की इज्जत लूट सकता है। मगर साला पीड़ा से बिलबिलाता बहुत है'''बच्चे की तरह रोता हुआ कहता है—नही-नही मुझे अधा मत करो'''मैं तेरी गाय हू'''भगवान के लिए छोड दो'—पर उस कमीने ने जिसकी इज्जत लूटी होगी—वह भी तो उसके आगे रोई होगी, गिड़गिडाई होगी '' तडपी होगी'''। जैसा करो'''वैसा भरो।'

उसने सोचा—अपराध पर अपराध ! एक अपराधो का सिलसिला ! तो क्या मुझे'''?'

वह भी काप-सा गया। अनायास पूछ बैठा—'सर ! ये खून के छीटे'''?'

'अरे ! वह कम्बख्त उठाईगीर है न, उसके एक घूसा मारा'''साले का सारा खून नाक के रास्ते से तर-तर निकल आया। आजकल सारे के सारे अपराधी कागज के हो गए है। मेरे पिताजी के जमाने मे अग्रेजो का राज्य था'''गोरे साहब सफेद टोपा वालों को कितनी भयकर यातनाए देते, पर वे मा के'''हँसते-हँसते रहते थे। बला की ताकत होती थी उनमे'''और आज'''आज !' वह खी-खी करके हँसा। लाठी को ठक से जमीन पर पटका। आकृति पर कडवाहट की परत जमाते हुए बोला—'एक घूसा मारा कि फस् से हवा निकल जाती है !'

'क्या कोई अपराधी पिटाई के'''।'

'ओ बे चीटी की औलाद !'''लातो के देवता बातो से नही मानते। आज भी कानून-वानून यह डडा है, यह जूता है। ओ बे चीटी की औलाद ! तूने मुझसे सच उगलवा लिया'''ठहर तेरी जुबान काटता हू'''।'

वह आतकित हो गया। एक ठडापन उसमें घुस गया। किस्मत अच्छी थी कि तभी उसके छूटने का आदेश आ गया। सभी जुलूस वालो को छोड दिया गया। कोई समझौता हो गया होगा। वह जेल से निकलते ही सरपट भाग खड़ा हुआ। उसने स्वागतार्थियों से माला नहीं पहनी। वह सोचता रहा कि हिंस्र नेत्र वाला लाखन उसका पीछा कर रहा है।

×

वह भागता जा रहा था। किसी ऐसी जगह की तलाश मे जहां भयहीन होकर चन्द पल सुस्ता ले।

वह एक मदिर की धर्मशाला के आगे बैठ गया। खूब हाफ रहा था। खूब प्यासा और भूखा था।

कुछ देर सुस्ताने के बाद उसने अपनी कमीज की दोनो बाहो से अपने चेहरे पर धूल-सनी पसीने की लकीरो को पोछा। नाक साफ की। पपडी जमे होठो पर तर्जनी उगली फिराई। फटे हुए कपडो के जूते को देखा।

फिर उठकर पुजारी के पास गया। उसने पुजारी से बुझे हुए स्वर मे कहा—'बाबा! मुझे प्यास लगी है। जरा पानी पिला दो।'

पुजारी का चेहरा आदर्श से पुत गया। उदारचेता की तरह बोला—'पानी क्यो, बेटा, तुम्हे यहा खाना भी मिलेगा। यह भगवान का घर है। यहा से आदमी कभी भी निराश नही जाता।'

उसने बडी शाति और अपनेपन से गटगट पानी पिया। फिर सतोष की लम्बी सास ली।

पुजारी ने उसके सिर पर हाथ रखकर बडी आत्मीयता से कहा—'बेटे! तुम मेरा एक छोटा सा काम कर दो, तब तक मैं तुम्हारे लिए भोजन की व्यवस्था करता हूं।'

उसे लगा कि वह जमीन के उस हिस्से पर आ पहुचा है जहा मनुष्यता है। मानवीय सवेदनाओ से भरे दिल है। भलाई का कोमल वातावरण है।

'बेकार हो?' पुजारी ने पूछा।

'जी, पुजारी जी, लम्बे अर्से से बेकार हू। पढ़ा-लिखा भी हू। आखिर बेकारी से तग आकर जुलूस मे शामिल हो गया। जुलूस वाला काम न खत्म होने वाला काम है। देखिए, एक जुलूस खत्म होता है दूसरा शुरू हो जाता है। कभी-कभी जुलूस मे पैसा, चाय और खाना भी जाता है। बडे प्रदर्शनो के मजे और ही होते हैं।···आदमी अपने को कही न कही व्यस्त रखने की कोशिश करता है।'

पुजारी ने उसे पैनी निगाह से सिर से पांव तक देखा। एकदम युवा था वह! भूख, बेकारी और ऊब ने उसे पीला कर दिया था। वह बुढ़ता जा रहा था। पुजारी ने उसके सिर पर हाथ रखा। अपनेपन से कहा—'भगवान ने चाहा तो तुम्हारी बेकारी खत्म हो जाएगी।' फिर पुजारी ने जैसे याद करके कहा—'हा, याद आया, बेटा एक काम कर दो!···वो सामने बुढ़िया रहती है, उसका एक सदूक मेरे पास है—उसमे उसकी बेटी के कपडे-लत्ते है···जरा पहुचा आओ। कह देना, पुजारी जी ने भेजा है सदूक। इस बीच मैं तुम्हारे खाने का बदोबस्त करता हू।'

वह खुश हो गया। उसने सोचा लम्बे अरसे के बाद अच्छा व जायकेदार खाना खायेगा।

पुजारी ने सदूक लाकर दिया। उसने उसे उठाया। वह बुढ़िया को पहुचा आया।

बुढ़िया ने आशीर्वाद दिया। वह लौट आया तो पुजारी ने एक बड़ा लिफाफा उसके हाथ में थमा दिया। उसमें लड्डू, पेड़े और कचौड़ियाँ थीं।

वह भीतर से खिल उठा। कई महीनों के बाद वह यह खायेगा। पुजारी भीतर चला गया।

अचानक उसे लगा कि पुजारी ने उसके साथ यह भिखारी जैसा बर्ताव किया है। अन्यथा शानदार तरीके से आसन लगाकर खाना खिलाता ! खैर···

वह वहां से काफी दूर एक नीम के पेड़ के नीचे आकर बैठ गया और पेट-पूजा करने लगा। तब उसे यह भी लगा कि उसके आसपास के त्रासदायक पल मर गये हैं।

अप्रत्याशित ही वह बुढ़िया वही सदूक ले जाती हुई दिखाई दी। वह जिज्ञासु हो गया। वह उसका पीछा करने लगा। वह लिफाफे में से लड्डू, पेड़े और कचौड़िया तोड़-तोड़कर यत्रतत्र खाने लगा।

वह बुढ़िया एक हवेली के आगे पहुंची। उसके भीतर घुसी। सेठ ने उस सदूक को लपक लिया कि एक चमत्कार हुआ।

कहां से पुलिस की जीप आ टपकी। उसमें से कई अधिकारी उतरे और उन्होंने संदूक को कब्जे में ले लिया। सेठ और बुढ़िया का घेराव कर लिया गया। घेराव !··· आजकल यह शब्द भी काफी आकर्षक हो गया है। वह दो बार विरोधियों के साथ घेराव करने गया था।···उसे उन घंटों के बीच बहुत खाना मिला था। जिस अफसर का घेराव किया गया था—वह सप्लाई आफिसर था और उसने एक भवन-निर्माण के ठेकेदार को सीमेंट को ब्लैक में बेचते हुए पकड़वाया था। सारे ठेकेदारों ने उसे सबक सिखाने के लिए उसका घेराव कर दिया। यह आरोप लगाकर की वह सिलसिलेवार सीमेंट न देकर अपने भाई-भतीजों को सीमेंट का परमिट देता है और वे उसे ब्लैक में बेचते हैं।

अपराधों का यह कितना विचित्र सिलसिला है ! एक अपराधी दूसरे व्यक्ति को भी अपराधी बनाता जा रहा है। यह सिलसिला···! यह रफ्तार···!

वह भी हवेली में पहुंच गया। दूर खड़ा हो गया। देखने-समझने लगा—क्या माजरा है? थोड़ी देर में उसे मालूम हुआ कि उस सदूक में चिथड़ों के बीच सोने के बिस्कुट हैं।

पर उसकी जिज्ञासा मरी नही। उसने महसूस किया कि उसमें जासूसी वाली प्रवृत्ति जाग गयी है। वह इस घटना का पूरा लेखा-जोखा लेने के लिए चौकस रहा। अपनी सामर्थ्य से परे वह दौड-धूप करता रहा। अत में उसे मालूम हुआ कि समयान्तर मे वे सोने के बिस्कुट असली खाने के बिस्कुट हो गये। बुढ़िया ने रोते-रोते बयान दिया—'असल बात यह है कि मेरी बेटी सेठजी के यहां काम करती है। मेरे घर मे कोई दरवाजा नही है, केवल चौखट है।···इसलिए मैं सदूक सेठजी के घर मे रखने के लिए ले गई थी···उसमे सोने के बिस्कुट कहा से होते सरकार ! मैं गरीब-दीन बुढ़िया हू। मेरे पास सोना देखने को नही···काश ! ये असली बिस्कुट सोने के हो जाते तो मेरी गरीबी दूर हो जाती और मैं अपनी बेटी का विवाह धूमधाम से कर देती।'

बुढ़िया बडी असहाय लग रही थी। उसके चेहरे पर अवसाद इस तरह पसरा हुआ था मानो वह भी मजी हुई अदाकार हो और वह हर तरह के भाव चेहरे पर लाने मे सक्षम है।

इस तरह बयानो ने सारे सबूतों को तहस-नहस कर दिया। सब अपराधी छूट गये। क्योंकि हमारे देश का कानून सबूत व चश्मदीद गवाह चाहता है और चश्मदीद गवाहो पर रिश्वत का चश्मा जो चढ़ा दिया जाता है।

उसे लगा कि उसका देश अपराधगाह बनता जा रहा है।

क्योंकि उसी शाम उसने एक फाइव-स्टार होटल के आगे पुजारी, सेठ और एक राजनेता को कहकहे लगाते हुए देखा था।

× × ×

वह फिर दौडा। दौडता-दौड़ता वह एक बुद्धिजीवी के पास पहुचा। वह सम्पादक, लेखक, प्रकाशक सभी कुछ था। उसका दोस्त था। एक बार उसने उसे आश्वासन दिया था—कभी सनसनीखेज न्यूज लाओगे तो मैं तुम्हे सौ रुपये दूगा।···

यह कितनी सनसनीखेज न्यूज है कि सोने के बिस्कुट खाने के बन गये···!

वह अपने दोस्त के कमरे मे घुसा तो उसने देखा कि वही सेठ बैठा-बैठा एक लिजलिजी हँसी हँस रहा है।

उसे देखते ही उसके दोस्त ने उसे बाहर बैठने के लिए कहा। आधे घटे के बाद सेठ चला गया तो दोस्त ने उसे भीतर बुलाया। उसकी सारी बातें सुनकर बुद्धिजीवी दोस्त हो-हो करके हँस पड़ा—'अपने को जासूस समझने की गलतफहमी मत पाल लेना। कभी हथकड़िया पड़ जायेंगी।'

उसे प्रतीत हुआ कि अचानक दफ्तर की सारी दीवारें ढह गयी है और सब कुछ धूल-धूसरित हो गया है। एक अपराध की मीनार जादुई मीनार की तरह उभरकर आकाश को छूने लगी है।

उसका दोस्त भारी स्वर मे बोला—'यहा से भाग जाओ।···अभी बड़ा एस० पी० आने वाले है। तुम्हे अफवाह व निराधार बातें करने के अपराध मे जेल की दुर्गंध-भरी कोठरी मे बन्द किया जा सकता है।'

वह दौड़ पड़ा।

भागमभाग।

× × ×

निरन्तर दौड़ने के बावजूद भूख ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। वह छात्रों के जुलूस में शामिल हो गया। एक दिन कट गया। वह मजदूरों के कई जुलूसों में नारे लगाता रहा'''समय गुजरता गया।

एक दिन मजदूरों के एक जुलूस में बड़े जोश-खरोश से आगे जा रहा था कि एकाएक दादानुमा व्यक्ति ने उसका गिरहबान पकड़ा और कड़ककर कहा—'तू किस मिल में काम करता है? तू किस कारखाने का मजदूर है?'

वह घबरा गया। आकुल-व्याकुल हो गया। उसकी जबान लड़खड़ाने लगी।

दादानुमा व्यक्ति ने उस पर धौल जमाकर कहा—'साला सेठ का गुर्गा, हमारे जुलूस को बेअसर करने आया है!'''मजदूरों को गुमराह करने के लिए यह गद्दार हममें शामिल हो गया है!'''मारो साले को!'''

वह आर्तस्वर में चीखा—'मुझे मत मारो'''मैं एक बेकार, परेशान और भूखा युवक हूं।'

पर लोग उस पर टूट पड़े।

वह चूहे की तरह लोगों की टांगों के बीच से निकल आया पर मारो-मारो की आवाजें विस्तार पाती रहीं। थोड़ी देर में जुलूस लड़ाई में बदल गया। पुलिस आ गयी। भीड़ पर काबू पाने के लिए पहले लाठी फिर अश्रुगैस, उसके बाद गोलियां!'''

ओह! यह सब क्या है?

कौन गुर्गा है सेठ का?

जब धर-पकड़ शुरू हुई तब भाग खड़ा हुआ। एक थानेदार चिल्लाया—'उस बदमाश को पकड़ो'''साला भाग रहा है। देखो उसके चेहरे को'''दस नम्बरी लगता है। एकदम गुंडा!'''' मगर वह भागने में सफल हो गया।

तब से वह भाग रहा है। उसे कहीं भी चैन नहीं। कहीं भी संतोष नहीं। उसे हर खूबसूरती के भीतर एक खोखलापन नजर आता था। जगह-जगह इन्सान इन्सान को जाति, धर्म, रंग और भाषा के नाम पर कत्ल कर रहा है। और तो और ''आदर्शों और शब्दों को निरर्थक मानकर लोग कमाई [illegible] रहे हैं। ''उसे लगता था कि सभ्यता-संस्कृति एक चमकदार [illegible] के [illegible] मनुष्यता को धारण कर रही है। कहीं भी इन्सान की सुरक्षा नहीं। घर, गांव, शहर, रेल, बस, मोटर, [illegible], [illegible] ''हर जगह वह असुरक्षित है। एकदम उसकी तरह आतंकित व परेशान। सर्वत्र [illegible] से त्रस्त-ग्रस्त!

अब वह भाग रहा है।

[illegible] उसके जिस्म का पूरा खून बहा। उसकी [illegible] किरचों की तरह छूटकर बिखर गयी। [illegible] '''एक

दहशत मे वह घिर गया।'''फिर उसने बहका-बहका जवाब देना शुरू कर दिया'''उसे एक भयंकर भ्रम सताने लगा कि कोई न कोई अपराधी उसका पीछा करता जा रहा है। क्योंकि उसने उस दिन थाली बजाकर चौराहे पर कहा था—'अपराधी केवल जेलों में सड़ने वाले ही नहीं होते हैं—यहां तो अफसर अपराधी है, क्लर्क अपराधी है, चपरासी अपराधी है, व्यापारी अपराधी है, छात्र अपराधी है, नेता और मंत्री अपराधी है, पुजारी और भक्त अपराधी है, तुम अपराधी हो और मैं अपराधी हू। ''पूरा का पूरा देश अपराधी है—यह सोने की चिड़िया नहीं एक अपराधगाह है। '

लोगों ने उसे बेशुमार गालियां दीं। एक-दो ने तो पत्थर भी मार दिये। फिर कई लोग गुस्से मे दांत पीसकर चिल्लाये—'हम सब अपराधी हैं तो यह सत्यवादी हरिश्चन्द्र यहां कहां से आ गया?'

वह चिल्लाया—'मैं भी अपराधी हू, क्योंकि मैं इतना मजबूर व कमजोर हो चुका हू कि भ्रष्ट व आदमखोर व्यवस्था के विरुद्ध सही लड़ाई नहीं लड़ सकता! दोस्तो! तुम एक सही रास्ता अपनाओ' 'इंकलाब का, ताकि मानव का संकट दूर हो जाय और यह अपराधगाह कहलाने वाला देश वापस सोने की चिड़िया कहलाए।'

एक लड़ाकू किस्म का आदमी अपनी बाहें चढ़ाकर आगे बढ़ा और जहरीले स्वर मे बोला—'ताकि तू उस सोने की चिड़िया को खा जाय। यह कोई विदेशी एजेंट लगता है वर्ना यह अपने देश को अपराधगाह नहीं कहता. देश में भ[illegible] यहीं [illegible] के खिलाफ नहीं बोलता। अराजकता फैलाने की बात नहीं करता। [illegible] को जिन्दा रहने देना महा अपराध है।'' ये हिंसा और अशांति फैलाते हैं।

वह भाग खड़ा हुआ।

भागता रहा'''भागता जायेगा'''समय की तरह बिना रुके।

कब तक?

राम जाने!

•••

अन्तर की उदासी

धर्मेश शर्मा

रचना ने फिर बुलाया है। वह फिर ढेर से प्रश्न करेगी। फिर एक लम्बा-सा भाषण देगी। उसने पिछली बार ही तो कहा था—'देख, जीवन और आदर्शों का द्वैत नहीं होना चाहिए। मुझे इससे बड़ी चिढ़ है लेकिन कुछ बातें ऐसी होती हैं जो हर एक को कही भी नहीं जाती हैं। उस वक्त आदमी उस आदमी को तलाश करता है जो उसके विचारों से मेल खाता हो। इसे संयोग ही कहा जाये कि तुम मिल गये हो।' रचना मुझे कई अर्थों से जानती है कि मैं शोलामर होकर लिख रहा हूं, घुस रहा हूं। साथ-साथ जीने की सभी रोजमर्रा की आवश्यकताओं में जूझ रहा हूं। मैं जिस होटल में घुसता हूं, वहीं जाने-पहचाने चेहरे सामने आ जाते हैं। उस क्षण एक धक्का-सा लगता है कि मैं यहां भी अकेला नहीं हूं। दुख होता है, इस लेखन प्रवृत्ति पर। फिर युवा आयु में अधिक छपना भी बुरा है। बूढ़े लेखक तो यों कहकर पीछा छुड़ाते हैं कि अधेड़ उम्र के बाद ही विचारों की खिचड़ी पकती है। 'युवकों के पास कहने को रखा है तिकड़मबाज।' मैं स्वयं इसे स्वीकार नहीं करता हूं। हां, मैं यों कह सकता हूं कि इन दोनों के बीच की जिन्दगी जी रहा हूं। मैंने रचना को कहा, 'रचना! मैं भी किसी के सामने सेक्स को लेकर वार्ता करना चाहता हूं, जो हर कहीं व्यक्त नहीं की जा सकती है। उस गंभीरता को तोड़ना चाहता हूं, जो हर क्षण काटती-कचोटती रहती है।'

रचना के हर पत्र में लिखा रहता है—तुम कब आ रहे हो? मुझे ताज्जुब होता है कि रचना मुझे बार-बार बुलाकर एक बला क्यों मोल लेना चाहती है? फिर क्या उसने पति के सामने संबंधों को व्यक्त कर दिया है? और नहीं किया है तो क्या अब करना चाहती है? यह भी मानता हूं कि उसका पति खुले दिमाग का है। उसने मुझे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लेखक बताया है। फिर मैं उससे कई बार मिल भी तो चुका हूं। वह मुझे ईश्वर तो नहीं लगता। रचना ने जब भी मेरी तरफ देखा तो उसके चेहरे के भाव बदले थे। फिर मैं उसे कैसे बताऊं कि रचना तेरी बीवी है और मेरी लेखनी। लेखनी में स्याही भरने वाली रचना ही तो है, तभी तो बार-बार उससे मिलने आता हूं। अब जब उसके पास जाऊंगा तो वह पहला प्रश्न यही तो करेगी कि नया क्या लिखा है?

इस बार उसे कुछ भी नहीं बताऊंगा। इस बार उसे स्पष्ट कह दूंगा कि रचना लेखक भावुक तब होता है जब उसकी प्रेरणा दिमाग में छाई हो। घटनाएं प्रकृति से

खेलती हो लेकिन तुम्हारी अन्दर की उदासी मुझे बार-बार आने को बाध्य करती है और मैं ठहरा लेखक जिसे तेरी उदासी भाती है। मैं अब सो नही पाऊगा। कोई अन्दर ही अन्दर कहता है कि लिखने लग जाओ। तन्हाई को व्यर्थ मे मर जाने दो। इसमे ही तो लेखनी का निखार है। मैं झुझला उठता हू इस लेखन पर। इस लेखन के परिवेश मे रहने के दोष पर। दोष ही कहूं। हर परिचय मे युवती बच्ची बन जाती है और मैं सर। एक सरहद की दीवार सामने खडी हो जाती है, उसे तोड़ू तो मन नही मानता है। उसे न तोड़ू तो दूरी बढ जाती है।

रचना के साथ भी यों ही कुछ घटा है। उसने कितनी बार कहा होगा कि आगे बढ़ू और उसे बाहों मे समा लू। मैंने भी कितनी बार चाहा कि रचना बस यो ही आखो की मचान फैलाए मेरे सामने बैठी रहे।

पिछली बार ही तो उसने कहा था कि देव— लेखक बहुत बडा पाठक भी होता है। उसे बहुत से पत्र पढने लिखने पडते है। वह हर पत्र मे लक्ष्य को ढूढता है—शेष बातें उसके लिए गौण होती हैं। उस वक्त मुझे बहुत बुरा लगा कि रचना आजकल सत्य को समझने लगी है। उसने एक बार कहा था कि सीमाओ को लाघने से विरोध बढ़ता है और फिर युद्ध। जिसका अंत बहुत बुरा होता है—जर्र-जर्र अवस्था मे पडोसी मुल्क इसका ताजा उदाहरण है। मैं भी इसे दकियानूसी विचार मानती हू। लेकिन जीवन में चुनौती को स्वीकारती हूं। उसके लिए मुझे लडना होगा। मुझे हँसते-हँसते मा भी बनना होगा।

रचना जब पूर्व मे मिली थी तो वह शादीशुदा ही थी। उसने बताया कि मेरी लव-मेरिज हुई है। लेकिन मेरा लव किसी से ट्रेन मे या पार्क मे नही हुआ। इसके पीछे एक राज छुपा हुआ है। मैं सबसे बडी सतान हू। मेरे से छोटी एक बहन और दो भाई हैं। सभी पढ़ने वाले हैं। मुझे ताड के समान बढ़ती देखकर घर में कभी-कभी गहरी उदासी छा जाती थी और मेरी पढ़ाई बी० ए० के बाद बन्द हो गई थी। घर वाले मेरी शादी की चिन्ता मे घुल रहे थे। टीके का रुपया जाति पूजा के दलाल हजारो की तादाद मे माग रहे थे। मैं जब घर मे प्रवेश करती तो मा मुझे देखकर कभी आसू छलकाती तो कभी गुस्से मे मुह फेर लेती। पिताजी टूटे-टूटे से लगते थे। कभी-कभी दोनों होले-होले मुझे लेकर चर्चा करते। मैं जब सुनती तो दिल दहल उठता। कभी-कभी तो ठहर-ठहर कर यो अहसास होता कि रचना—तेरे भाग्य मे क्या लिखा है? तुम बन्धनो को तोडकर आगे क्यो नही बढती हो? किसी पर बोझ बनकर जीने मे कौन-सी तुक है? विचित्र बहन-भाईयो के भविष्य को लेकर कमजोर हो जाती। सब कुछ विधि पर छोड़ देती। कोने में पड़ी गीता उठाकर पढने लगती या फिर घर से निकलकर सहेली के सामने घण्टो रोती रहती।

एक रोज़ सहेली के दूर के रिश्ते का भाई आया हुआ था। उसने उसके सम्मुख मेरी कहानी दोहराई। वह बोला मैं लड़की को देखकर अपना मत दे सकता हू। टीके सबधित रिवाजों का पक्षपाती नही हू। फिर उसने मुझे देखा। मैंने उसे देखा। उसने

कहा—मैं सर्विस में हूं। मेरे पास भी बी० ए० की डिग्री है। यह सुनकर मुझे सन्देह हुआ कि इस डिग्री को हासिल करने के बाद अब तक इसकी शादी क्यों नहीं हुई ? लेकिन उसके विगत को मैंने उस वक्त जानने का प्रयास नहीं किया। चूंकि मैंने सोचा—भाई-बहनों के लिए मैं स्वयं की जिन्दगी को मिटा दूं तो क्या हर्ज है ? अतः मैंने मैरिज की स्वीकृति दे दी। मेरे ख्वाबों ख्याल मण्डरा रहे थे। मैंने सोच लिया था कि स्वयं को मिटाने से दूसरे बनते हैं। मां-बाप सभी की जिन्दगी भोगकर यदि थक गये हैं तो मैं इनके लिए अब दीवार बनकर खड़ी क्यों रहूं। इस मैरिज के कारण दोनों पक्ष खुश नहीं थे। मेरे पति के परिवार तो इस कारण नाराज था कि उन्हें टीके में कुछ भी रुपये नहीं मिले। और मेरी मां इस कारण दुखी थी कि हमारी बुरी हालत के कारण मैं जीवन के साथ खिलवाड़ कर रही हूं एवं मेरी स्वयं की दशा कुछ भिन्न थी जो व्यक्त नहीं की जा सकती। बहुत सादगी से मेरी शादी हो गई। मेरी मां ने मुझे कुछ सोना देना चाहा तो मैंने कहा कि मां! मैं सर्विस कर यह हासिल कर लूंगी। मैं न तुमसे कुछ लेना चाहती हूं और न ही अपने ससुराल वालों से। मेरे पति ने इसमें मेरा सहयोग दिया।

शादी के बाद ससुराल में आई। सभी ने मुझे देखकर एकान्त में चर्चाएं कीं। मैं मन ही मन सब समझ गई। ठहर-ठहरकर मुझे लगने लगा कि सामाजिक बन्धनों में कितना भद्दापन है। पढ़े-लिखे लोग भी संस्कारों की आड़ में चन्द सिक्कों के लिए सामाजिक बन्धन के पक्ष को महत्व देते हैं। खैर! उन मुश्किलों को मार कर पति के पास पहुंची। एक दुबला-पतला इन्सान चाय सिगरेटों पर जीवन जी रहा था—जिसके दिमाग में धन एकत्रित करने की प्रबल इच्छा मगर कार्य करने की शक्ति नहीं थी। थोड़ी-थोड़ी देर में गुस्सा होना। दिमागी न्यूज़-पेपर का केवल प्रथम पृष्ठ ही, और जीवन में सम्भावनाओं की दौड़ चन्द्रलोक तक की। उस वक्त रात को बारह बजे थे। मुझे नींद नहीं आ रही थी। कभी मैं भविष्य को लेकर सोचती तो कभी पति को लेकर। मन की दुविधा बढ़ रही थी। तभी उसने कहा—चाय चलेगी ?

—नहीं।

—क्यों ?

—हर चीज का कोई समय होता है।

—लेकिन यह मेरे नेचर के अनुकूल है।

"दूसरों के सुख के लिए नेचर को बदलना भी पड़ता है।"

उस रोज उसने मेरी बात नहीं मानी। वह स्वयं उठा। चाय बनाई और पी। मैं केवल लेटी-लेटी यह सब देखती रही। वह चाय पीकर सिगरेट पीने लगा और फिर सो गया। दूसरे रोज भी उसने ऐसा ही किया। मैं जल-भुनकर रह गई। तीसरे रोज उसने मुझे उदास देखकर कहा—"रचना! मैं होले-होले नेचर को बदलने का प्रयास कर रहा हूं। यह सुनकर मुझे मेरी विजय का आभास होने लगा। फिर इसकी छुट्टी समाप्त हो गई और मैं उसके साथ नये स्थान पर आ गई। अब मैंने आकर स्वयं का

र देखा—जहां मुझे पूरा जीवन व्यतीत करना था। मैंने उसी वक्त ठान ली कि सर्विस
रूंगी—इसी के साथ रहकर समाज की बुराइयों से लड़ती रहूंगी।

रचना की कही कहानी को दोहराता-दोहराता स्टेशन तक पहुंच गया। रचना
ड़ी थी। उसके साथ उसका पति था। दोनों बहुत प्रसन्न मुद्रा में थे। जल्दी ही हम
र पहुंच गये। पानी खौल रहा था। उसने चाय स्टोव पर चढ़ायी और कहा—कुछ
ाने के लिए तो लाइये।

उसका पति चला गया तो रचना ने मेरी तरफ देखकर कहा—आज मैंने अपनी
सन्द का खाना बनाया है।

—अच्छा।

—यह भी सुबह से परेशान है—दो बार बस तक जा आए।

—तुमने मेरी पसन्द की पोशाक भी तो पहनी है।

—नहीं। जल्दी में यह साड़ी हाथ में आई। अतः पहन ली।

—तुम्हारी झूठ में भी कला है।

—चलो हटो।

रचना का पति आ गया। तीनों ने चाय पी। रचना बीच-बीच में नजरें मिलाने
ी नियत से बातों में से बातें निकालने लगी और मेरे दिमाग में रचना की पूर्व कही
ई बातें स्मरण आने लगी···

देव! जीवन में कुछ घटनाएं होती हैं, जो भुलाई नहीं जातीं। कुछ चेहरे ऐसे
ोते हैं जो जीवन भर आंखों से ओझल नहीं होते हैं। कुछ बातें ऐसी होती हैं जो तोड़ी नहीं
ाते हैं वैसे इन सबके लिए एग्रीमेंट नहीं लिखा जाता है। बस, यह तो दिल में ही
हता है। मैं बहुत सम्भल-सम्भल कर चली। हर मोड़ को सामना करती रही लेकिन तुम्हारी
ावुकता के सम्मुख रुक गई। जीवन में कई चेहरे पास आये और चले गए। उनकी
ूख, भूख ही रही। वे मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सके। वे कुछ भी मेरा हासिल नहीं
र सके क्योंकि उनके दिल में स्वार्थ था लेकिन तुम उन सबसे अलग हो। मुझे अब तक
ता नहीं लगा कि तुम मुझसे चाहते क्या हो?

रचना! तुम क्या हो? यह बतलाने के लिए मेरे पास शब्द कहां है? लेखनी
ागज पर चलती है—वह भी तुम्हारे भावों को पूर्ण नहीं बनाती है कविता तुम्हारे भावों
ो व्यक्त नहीं करती है—कहानी में तुम नायक को गौण बना देती हो।

यह सुनकर रचना ने कहा, देव! जाने के पूर्व कुछ तो कहो। मैं हर क्षण इस
ुविधा में रहूंगी कि तुमने मुझसे कुछ भी नहीं मांगा, और मांगा तो मुझे ही स्मरण करने
ा एक आलम्बन।

चाय पड़ी-पड़ी ठण्डी हो रही थी। रचना भी पी चुकी थी उसका पति भी तो
ुका था। लेकिन मैं पी नहीं सका। उसने नजरें उठाकर मेरी तरफ देखा। फिर पति
े बोली—यह तो घर तक चाय नहीं पी सके—आप [illegible] से कहके [illegible] फिर
ाहर चलते हैं।

उसका पति उठकर चुपचाप बाहर चला गया। उसने हीटर पर रखक
फिर गर्म की और बोली—देखो अति भावुकता दुखदायी होती है। जल्दी-जल्दी
पीओ। बाथ मे जाकर कुछ स्वस्थ हो आओ। फिर घूमने चलते हैं—मैं मुन्ने को ज
हूं। मैंने कहा—यह काम मैं करूंगा क्योंकि बच्चे को सुलाना मुश्किल काम है।
अच्छा आसान काम आप कीजिये और मुश्किल मेरे लिये छोड़ दीजिये।
एक चोट कर वह मेरे सामने से हट गयी। मैं उठकर मुन्ने की खाट के पास ग
और वह फिर आई और बोली आज रुकोगे न?

—हां।

—फिर मंदिर चलेंगे।

—वहां, अब क्या मांगोगी?

—नहीं बतलाऊंगी।

—कसम दिलाऊं।

—नहीं।

उस वक्त मेरे कण्ठ अवरुद्ध हो गये। आगे कुछ व्यक्त करने को शब्द नहीं मिले।
उसने मेरी तरफ इस बार गंभीरता से देखा। ऐसी गंभीरता जिससे मैं परिचित था हां
मुझे पूर्व की बात स्मरण है···मैंने रचना को एक बार कहा था कि रचना! पैन में
स्याही न हो तो वह पैन किस काम का। रचना, स्वयं की कृति न हो वह रचना किस
काम की। मैं ऊब चुका हूं इस जिन्दगी से जिसमें दुख-दर्द के अलावा अन्य कुछ भी नहीं।
फिर मैं मौन हो गया। इस पर उसने कहा—कैसी बातें करते हो। तुम में सृजन करने
की शक्ति है—उसे मैं अच्छी तरह जानती हूं। तुम बहुत अच्छे हो यह भी मैं जानती हूं।
तुम्हारे हृदय मे कालापन नहीं है यह भी मैं जानती हूं। जब तुम पलायन करने की
सोचोगे तो मैं जीवन से संघर्ष कैसे करूंगी—अब मेरे जीवन में कहीं भी आदर्श शेष
रहेगा तो तुम्हारे ही कारण—एक तुम ही तो मुझे कह सकते हो कि रचना मेरी प्रेरणा
है। अन्य लोगों के लिए तो रचना हथियाने के लिए एक वस्तुमात्र है। नहीं, नहीं तुम
मुझे यह दर्द देकर मेरे मानव से हट नहीं सकते। कहीं ऐसा हुआ तो मैं घुल-घुल कर मर
जाऊंगी। मेरा पति मुझे कुलटा कहेगा। रूढ़ियों के फंदे में मत जाओ। बदन की गर्मी
से हृदय का ताप अधिक होता है। मुझे उसमें झुलसाने मत दो। यों कह कर वह आंसू
टपकाने लगी। मैंने कहा—रचना! क्या करती हो? मैं तो तुम्हारे बुलाने पर
आया हूं।

थोड़ी देर में उसका पति आ गया। वह बोली—घूमने चलोगे। उसने मुझसे
पूछा—पिक्चर चलोगे। दोनों ही जगह मुश्किल है। रचना ने कहा—मंदिर में आस्था
है।

—पिक्चर में कला है।

—पिक्चर की कहानी झूठी होती है।

···सत्य को नंगा देखने को तैयार भी नहीं। फिर आस्था के लिए कला को क्यों

बर्बाद किया जावे।

—वह मंदिर से लौटने पर मालूम होगा।

शहर के दूर कोने मे शिव मंदिर था। हम तीनो वहां पहुचे। वहां रचना आख मूदे कुछ देर खडी रही उसका पति मुन्ने को लिए इधर-उधर टहलता रहा। वह मेरे पास आई और बोली—शिव-पार्वती की प्रेम की कथा भी प्रशसनीय है।

—कैसे ?

—पार्वती जब आग मे जल गई तो शिव वर्षों आखें मूदे चिन्तन करता रहा लेकिन उसका ध्यान पार्वती से नही हटा। वह उसी ध्यान मे अनादि हो गया।

फिर उसने पति को अपने पास बुलाया और कहा, 'मै शिव के सम्मुख कहती हू कि देव मेरा मित्र है, सखा है—इससे आगे इस जीवन मे कुछ भी नही है'—वह रोती-रोती फिर बोली—'मैं यह भी स्पष्ट करती हू कि मरने के बाद कोई अन्य जीवन है तो मुझे देव पति के रूप मे मिले लेकिन इस जीवन मे नही।' इतना कहकर वह फफक-फफक कर रोने लगी। मानो उसने अपनी अन्दर की उदासी बाहर कर दी हो और मैंने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—'रचना महान है—रचना पवित्र है—वह मेरी प्रेरणा है···जो हमेशा-हमेशा रहेगी ! और मैं लम्बे सफर पर चल पडा।

●●●

वह और मैं

० योगेन्द्र किसलय

०००

मेरा ख्याल था कि वह मेरा सुझाव स्वीकार नहीं करेगा, लेकिन वह तुरन्त राजी हो गया। पन्द्रह दिनों के अन्दर ही वह—मेरे काफी करीब आ गया था। अपनी, अपने घर की बहुत-सी बातें वह मुझे बता चुका था।

'मजबूरी है, साहब। दसवीं पास हूं। सुबह सात बजे जगता हूं जिसकी रात को ग्यारह बजे छुट्टी मिलती है। इतना थक जाता हू कि सुबह उठने को जी नही करता।'

'कितना पैसा देता है तुम्हारा मालिक?'

'नब्बे रुपये। उसमे भी टूट-फूट के रुपये काट लेता है।'

'छोड़कर किसी अच्छे होटल मे चले जाओ। इतने अच्छे कुक को तो कोई भी खुशी-खुशी रख लेगा।'

'मुश्किल है, साहब। वहा जो लोग लगे हुए हैं वे घुसने नही देते। ट्राई मारी थी। कहते हैं पहले काम देखेंगे फिर पैसे तय करेंगे।

एक दिन मैने उससे कहा।

'तुम यहां इतना तग हो तो छोड़कर वापस गांव चला जा।'

'नही साहब। भूखो मरने से तो यही ठीक है। दोनो वक्त का खाना मिल जाता है और हर महीने बडे भाई को रुपये भी भेज देता हू। पर...।'

इस 'पर' में निहित उसकी दुविधा को मैं जान गया था। होटल मे रसोइये के काम से उसका जीवन नही सुधरने वाला। उसके सामने भी अपने सफल कैरियर की एक तसवीर थी जो न्यूनतम चपरासीगिरी से शुरू होकर बाबूगिरी पर समाप्त हो जाती थी।

उस शाम वह बिलकुल टूटे हुए स्वर मे बोला।

'साहब, होटल के काम को छोड़कर मुझे किसी भी दूसरे काम पर लगा दो। यहां अब और नही रह सकता।'

वह मेरे साथ होटल के बाहर आ गया था। मैंने कहा:

'भाई रतन, अब तू इतना उकता गया है तो छोड़ ही दे। चाहे तो मेरे साथ कुछ दिनो तक रह। अकेले आदमी का घर है। मेरी और अपनी रोटियां बना। जो पैसे मैं यहां खाने मे खर्च करता हूं उतने मे अपने दोनो का मजे मे काम चल जायेगा। इसी बीच तेरी नौकरी खोजेंगे। महीने, दो महीने भी लग सकते हैं। बुरी तरह गांव भेजना। बाद

मैं वही ये सोचे कि ये नब्बे रुपये की नौकरी भी हाथ से गयी।'

न वह झिझका, न ही उसने निर्णय लेने मे कोई समय लगाया। मालिक से अपना पूरा हिसाब कर अगले ही दिन वह दोपहर को घर आ गया। सम्पत्ति या असबाब के नाम पर उसके पास एक थैला था जिसमे उसने अपने कपड़े ठूंस रखे थे।

'साहब, पचास रुपये दो। सामान लाना है।'

यदि ईमानदारी से कहूं तो मुझे उस समय उसकी नीयत पर शक हुआ था। क्या भरोसा? पचास रुपये लेकर भाग जाये। लेकिन व्यक्तियों के अन्तर में झांकने तथा उनके चेहरे पढ़ने मे मैंने आज तक भूल नही की थी। मुझे रतन पर पूरा विश्वास था।

वह दो घंटे में ही बाजार से सामान लेकर लौट आया था।

'अभी तो इससे काम चलेगा। धीरे-धीरे बाकी सामान इकट्ठा करेंगे।'

उसने आते ही स्टोव पर अभी-अभी खरीद कर लाए अलमूनियम के भगोने में चाय बनाकर मुझे पिलायी। खुद नही पी। मेरे जोर से कहने पर ही रसोई के अन्दर गया और जल्दी-जल्दी चाय गिटक कर मेरे कमरे मे आकर फर्श पर बैठ गया।

'साहब सिवाय स्टोव और एक छोटी-सी भगोनी के आपने गृहस्थी का कुछ भी नही जोड़ा है।'

'जरूरत ही क्या थी। बस दूध गर्म कर लिया या कभी चाय बना ली।'

'बरतन-भाडे तो होने ही चाहिये। एक-एक करके जोड़ते तो रसोई बरतनों से भरी दीखती।'

कुछ ही दिनों मे रतन मेरी दिनचर्या का एक आवश्यक अंग हो गया था। सीमित साधनो मे वह मुझे गर्म और बेहद लजीज खाना खिलाता। यूं कहिये कि मेरे उठने से लेकर सोने तक का पूरा चार्ट उसे कंठस्थ था और एक निष्ठावान खिदमतगार की तरह वह मेरा पूरा ध्यान रखता। वह मेरे मूड के प्रत्येक क्षण से परिचित हो गया था। रात को सोने से पहले वह हमेशा मेरी चारपायी के पास नीचे फर्श पर बैठता और घंटों अपने घर तथा गांव की बातें बताता रहता।

पन्द्रह दिन हो गए थे और कोशिश करने पर भी कहीं उसकी नौकरी लगने के आसार नजर नही आ रहे थे। मैंने खुलासा देते हुए उससे कहा।

'रतन, कहीं तू ये तो नहीं सोचता कि मैं अपने आराम के लिए तेरी नौकरी में ढील कर रहा हूं।'

वह उठकर मेरे पास से चला गया। मैं जान गया कि मैंने अनजाने में ही सही लेकिन उसकी भावना को चोट पहुंचायी है।

उसने घर का काम-काज किया। दोनो वक्त मुझे खाना खिलाया। [illegible] पन-वाड़ी से पान भी लाकर दिया, लेकिन रात तक मुझसे बोला नहीं। बिस्तर पर पड़े-पड़े ही मनाने की गरज से मैंने उसे आवाज लगायी। पर आकर चुपचाप खड़ा हो गया।

'ऐसी भी क्या नाराजगी भाई। घर में बोलने-बतियाने का एक तू ही तो है। अब तू ही मुंह फुलाये रहेगा तो मन कैसे लगेगा।'

वह रोने लग गया था।

'साहब कहे देता हूं आप फिर कभी ऐसी बात नही करना। जब तक आप नही निकालेंगे मैं यही काम करता रहूंगा। नौकरी लगे या न लगे।'

डेढ़ महीना हो गया था और आर० सी० पी० में अपने जिस मंडल अभियन्ता मित्र के माध्यम से मैं उसकी कोशिश कर रहा था वे मेरे बार-बार फोन करने पर यही कहते : 'आपसे हमारा प्रामिज है। बस कुछ दिनों की ही बात है।'

एक शाम दफ्तर से लौटा तो घर मे एक अनजाने देहाती को आराम से बरामदे मे बीड़ी पीते देख मैं कुछ ठिठका। बाद में सब मालूम पड़ा। वह रतन का बड़ा भाई था। चूंकि रतन लगभग दो महीनो से घर कुछ भी पैसे नही भेज पा रहा था, इसलिए तथा साथ ही उसकी खैर-खबर लेने के लिए वह खुद शहर चला आया था। मैं सोचने लगा कि अब इसे क्या कैफियत दू? क्यो रखा है रतन को मैंने अपने पास? कब तक लगेगी उसकी नौकरी? इससे तो पहले ही ठीक था। हर महीने पचास-साठ घर भेज दिया करता था।

लेकिन रतन के भाई ने मेरी सब परेशानी खुद ही हल कर दी।

'बाबू जी मैंने सब देख लिया है। रतन बडे आराम मे है। घरवाले भी इतना ध्यान नही रख सकते।'

उसे शाम ही की बस से गांव जाना था। जाते वक्त वह फिर आग्रह करता गया 'साहब, कितना भी टेम लगे आप इसे सरकारी नौकर मे ही फिट कराना। जिन्दगी बन जायेगी। इसके भाग जो आप जैसे का सहारा मिल गया।'

मैंने रतन की ओर देखते हुए परिहास मे बात टाली।

'सहारा तो मुझे इसका है। लगता है अपना भी कोई घर है। बहुत सेवा करता है।'

एक बार और वह बोला :

'साहब, सच्ची मानना मन को बडी तसल्ली हुई। रतन की अब हमे कोई चिन्ता नही। आपके साये में सब ठीक होगा।'

मैं रतन के साथ इतना जुड़ गया था कि जब भी उससे अलग होने की कल्पना करता तो मन भारी-सा हो जाता। यदि मेरे सम्पूर्ण को किसी ने आज तक जाना था तो वह रतन ही था। एक स्थिति-प्रज्ञ और अनुभवी व्यक्ति की तरह वह मुझे परामर्श देता ---तरह-तरह के :

'साहब, ये चावला साहब रोज शाम को अपने यहां क्यों आते हैं? चाय बनती है, कई बार खाना भी यहीं खाते हैं। खर्चा होता है, साहब। उनका तो अपना घर है। आपको तो नही बुलाते?'

'साहब, ये लहरी बाबू अपने को पसन्द नही है। हमेशा औरतों की तरह ही बातें करते हैं। मन खराब होता है इससे, साहब।'

जब उसके उपदेश कुछ अधिक होने लगते या जब वह अपनी सीमा का आवश्य-

घर में [illegible] करना [illegible] जाती। लेकिन उसका [illegible] ही रहा। आखिरी दिनों में तो रतन [illegible] कर लिया था।

'[illegible]। सुबह [illegible] दिया था। रविवार गए होंगे तो [illegible] था। [illegible] पर लगे होंगे। वो [illegible] और [illegible] होंगे।

'रविवार नहीं गए थे, भाई।'

'तो फिर काहे में पहुंचे हो गए?'

'अरे, मिस्टर रतन। सुबह सुबह ये [illegible] का [illegible] छोड़ो और जल्दी से चाय पेश करो।'

वह बड़बड़ाता हुआ रसोई में चला गया था।

पूरे तीन महीनों के बाद उसकी नौकरी लग गयी थी। मैं खुद उसे स्कूटर पर बिठाकर ले गया था, और उसके नये साहब के सुपुर्द कर आया था। बड़े मुश्किल के दिन थे उसके लिए। जिस इंजीनियर के नीचे उसे लगाया गया था। साढ़े आठ के लगभग उसे घर पर बुलाते, वहां सफाई बरतन आदि करने के बाद उसे आधा घंटे की छुट्टी मिलती। वह घर भागता। मेरे लिए खाना लगाता, खुद जल्दी-जल्दी अपना पेट भरता और फिर दफ्तर भाग जाता। मेरा खाना वह सुबह उठकर ही बना देता था। शाम को आफिस से वह फिर अपने निरीक्षक के घर जाता, जरूरी बेगार करता, और लौटकर आता तो यहां मेरी गृहस्थी में लग जाता। मैंने हिसाब लगाया था। वह सुबह छह बजे से रात के ग्यारह बजे तक काम में लगा रहता। मुझे लगता कहीं वह बीमार न पड़ जाये।

नौकरी लगने के पन्द्रह दिनों बाद ही उसका तबादला राजस्थान नहर की एक परियोजना पर हो गया। वह खुश नहीं था। उसे मेरी चिन्ता थी। फिर से वही होटल का भोजन और अनियमित जिन्दगी। फिर उसकी सेवाओं से मैं जरूरत से अधिक आरामतलब बन गया था।

मैंने उससे कहा कि यह अच्छा ही हुआ। वहां उसे भत्ता भी मिलेगा और यह सुबह से शाम तक की भागादौड़ी भी नहीं रहेगी।

जाने से तीन-चार दिनों पहले से ही वह जब भी समय मिलता मेरे पास आकर बैठ जाता और मेरी सुविधा सम्बन्धी अनेक निर्देश देता।

'होटल में मत खाना। घर में पूरा सामान है। मैंने मोहल्ले की एक नौकरानी से बात कर ली है। बूढ़ी है और भली है। बीस रुपये लेगी। कल सुबह आयेगी।'

जाते समय वह बिलख-बिलख कर रोया था। बहुत दिनों तक उसकी अनुपस्थिति खली। घर में टिककर बैठने को मन नहीं करता। रतन हर सप्ताह खत डालता। उसके खतों में से ही सब नसीहतें होतीं जो वह मुझे यहां दिया करता था। अन्त में वह यह उल्लेख करना नहीं भूलता—साहब, आपने मेरी जिन्दगी बना दी।

होटल में जिन्दगी की भरपूर तल्खी ढोये एक मामूली खानसामे की हैसियत से उससे मेरी जान-पहचान हुई थी, और अब वह एक सरकारी चपरासी था। मैं नहीं चाहता कि उसकी महत्वाकांक्षा यहीं समाप्त हो जाये। कुछ वर्षों में शायद वह क्लर्क बन जाये। शायद कॅरियर के हिसाब से यह उसकी आखिरी हसरत ही हो।

दो महीनों बाद वह शाम के वक्त घर की सीढ़ियों पर बैठा मिला। दो दिनों की छुट्टी लेकर आया था। मुझे देखते ही आगे बढ़कर मेरे पावों पर झुक गया।

'साहब, दो महीनों की एक साथ ही तनखा मिली। बो तबादला हुआ था उसके भी पैसे मिले।'

उसने अपनी जिन्दगी में पहली बार इतने रुपये कमाये थे। उनका रोमांचित होना वाजिब था। इस बार मैंने उसे नसीहत दी कि वह थोड़ा-थोड़ा करके कुछ रुपया बचाये। पोस्टऑफिस में खाता खोल ले। पैसा हमेशा काम आता है। आगे जाकर शादी भी तो बनानी है।

उसी शाम मैंने उसे उसके गांव भेज दिया था ताकि वह अपने घरवालों के बीच कुछ समय बिता सके।

बस-स्टॅण्ड से लौटकर जब खाना खाने बैठा तो नौकरानी, जिसे मैं मां जी के नाम से पुकारने लगा था, पास आकर बोली।

'बाबू, रतन मुझे पांच रुपया दे गया है।'

इससे पहले कि मैं पूछता, 'क्यों?' वह बोली।

'कह रहा था कि साहब का काम अच्छे से करना। बहुत बड़ी नौकरी लग गयी है क्या बाबू उसकी?'

मैंने बस 'हां' भर कहा, और फिर रतन के बारे में सोचने लगा जो शायद हर समय मेरे बारे में ही सोचता रहता होगा। क्या और कैसे-कैसे सम्बन्ध बन जाते हैं जिन्दगी में...?

ooo

चुपघर

० नीलम पंडित

०००

मैं जहा से भी सोचना शुरू करता हू, बात कुत्ते पर आकर समाप्त हो जाती है, कुत्ता यानी हमारा कुत्ता सिली, न जाने क्या सोच कर सोना ने इसका नाम रख दिया था सिली। सिली मतलब बेवकूफ, हम अक्लमन्दो के बीच यही एक बेवकूफ था, पर अब लगता है हमारे साथ रहते यह हमसे भी ज्यादा अक्लमन्द हो गया है।

सिली तो बहुत बाद में आया हमारे परिवार में, सोना भी अभी दस साल की ही है, इससे पहले की जिन्दगी पर नजर दौडाता हू तो लगता है, मौसमी, फूलो की तरह हमारे महक के दिन भी कब के बीत चुके है खिलती हुई बहार की मुस्कुराती हवा थे हम, पर समय ने हमे कितना परिवर्तित कर दिया, कहां से कहा आ गए हम, हम लोग चले थे घर की तलाश मे और आकर रहने लग गए थे चुपघर मे।

सिली और सोना से पहले हम घर मे नही रहते थे, रहते थे एक मकान मे, शहर अजनबी था, लोग भी, पर हम सब लोग अन्जान न थे, हम सब यानी मैं, पिताजी, मा और भैया, उन दिनो सोना आने को थी, वे हमारे बचपन के दिन थे, खेलने खाने के दिन, पर उन दिनो खेलने को होते थे वही सड़क के खेल और खाने को सूखी रोटिया और दाल, महीने के तीस दिन इसी तरह गुजर जाते थे, हा, एक तारीख हमारे लिए खुशी का पैगाम लाती।

एक तारीख का हर मध्यवर्गीय परिवार की तरह हमारे यहा भी बड़ा महत्व था, सुबह से ही तैयारी शुरू हो जाती, कपड़े धोकर प्रेस किए जाते, जूतो को चमकाया जाता, मैं छोटा-सा था सो कभी स्कूल न जाने की जिद कर बैठता, और दिनो तो पिटाई होती पर एक तारीख को सब माफ था, तो शाम आती, यह शाम जिसका हमें पूरे महीने इन्तजार रहता, एक तारीख की शाम घर से बाहर हम किसी अच्छे होटल में खाना खाते, खाना खाते हुए पिछली एक तारीखो के खाने से आज के खाने की तुलना करते।

वहा से निकल कर सिनेमा देखते, सबसे ऊची क्लास मे, बस एक दिन ही तो होता था जब हम सारी दुनिया को बता देना चाहते थे कि हम भी इस दुनिया मे है, हम भी होटलो मे जा सकते है, ऊची क्लास मे पिक्चर देख सकते है, क्या हुआ जो हमारे पास कार-स्कूटर नही, मै अपने धुले कपड़ो की ओर निगाह डाल कर सोचता कि शायद लोग यही सोच रहे होंगे, हम आज कार छोड़कर पैदल ही घूमने निकले है।

सारे रास्ते पिताजी चहकते मुस्काते जाते, बीच सड़क पर कभी-कभी हमारे

ठहाके सुनकर आते-जाते लोग ठिठक कर खड़े हो जाते, हम एक नजर उन पर और एक नजर अपने कपड़ों पर डालते और फिर बेपरवाह होकर गुजर आते, मा बहुत कम बोलती थी, जो मुह में साड़ी का कोना दबाए मुस्कुराती, कभी अगर पिताजी के कोई साथी भी साथ होते तो वे हमें बताते कि कैसे शादी के पहले-पहल दिनो मा ने दाल बनाई थी तो इतना पानी डाल दिया था कि डुबकी लगा कर दाल के दाने निकालने पड़े थे, और एक बार अरवी की सूखी सब्जी बनाई थी तो टुथपेस्ट जैसी बन गई थी।

मा पिताजी को घूर कर देखती पर उनके साथी को देख शरमा कर रह जाती। मैं और भैया इस नोंक-झोंक का मजा लेते।

रात देर गए तक हमारे होठो पर शाम को खाए खाने का स्वाद होता। सिनेमा के बारे मे बहस होती। मैं तो जल्दी सो जाता, जाने कब तक बातचीत करते सभी लोग सो जाते।

अगली सुबह वही मूग की दाल बनती और हम उसी मे तृप्त हो जाते, फिर इन्तजार करते एक तारीख के आने का उस छोटे-से किराए के मकान में एक-एक दिन बीतता जाता, महीने के अन्त मे थोड़ा-थोड़ा करके आटा आता, बीस तारीख के बाद सब्जी बन्द, दोनो समय दाल बनती, हम लोग अपनी छोटी-छोटी आकाक्षाओ को दबाए रहते, एक तारीख के लिए।

एक दिन शाम को मां की तबियत बिगड़ गई, उन्हे अस्पताल ले जाया गया, उस रात मैं और भैया अकेले उस मकान मे रहे, पिताजी और मां के बिना वो रात काटे नही कट रही थी, भैया ने कहा, 'गुड्डू, तुझे पता है मा अस्पताल क्यो गई है ?'

'नही' मैंने कहा।

'तेरे लिए एक और छोटा-सा भैया लेने।'

'पर भैया का क्या करना है ? तुम तो हो, मुझे तो एक छोटी-सी बहिन चाहिए।'

'हट पगले, बहन से भाई अच्छा होता है।'

'नही बहिन।'

'बहिन आती है तो उसकी शादी करनी पडती है, फिर वो चली जाती है, भाई तो हमेशा अपने पास रहता है।'

'फिर भी मुझे बहिन चाहिए'' मेरी जिद् थी।

भैया ने एक तिरस्कार भरी हुंकार भरी और मुह मोड कर सो गया, मैं रात भर भगवान से प्रार्थना करता रहा कि हे भगवान देना तो बहिन देना नहीं तो मत देना।

अगले दिन पिताज़ी ने सोना के आने का सन्देश दिया, मुझे जितनी प्रसन्नता हुई थी भैया को उतना ही दुःख, मुझे आज भी याद है उस दिन भैया ने खाना नही खाया, था। अस्पताल भी नही गया था सोना को देखने, और तीन दिन बाद मां घर वापस आ गई।

फिर आई एक तारीख और हमें पहला धक्का लगा जब मां ने बाहर खाने को

जाने से मना कर दिया, उसने घर पर ही खीर बनाई, भैया ने मेरी ओर दयनीय आखो से देखा, हमारे सूजे हुए मुह देख पिताजी ने एक किस्सा छेड़ दिया, हँसी तो उभरी पर एक दबी-दबी सी आह के साथ, पिताजी सब समझ रहे थे, भैया को बुलाकर उन्होंने कुछ समझाया।

उस शाम मैं और भैया, बस दोनो ही सिनेमा देखने गए, पिता जी ने पैसे तो ऊची क्लास के दिए थे पर हमने सस्ती टिकटें खरीदीं, वापस आकर भैया ने बाकी पैसे मा के हाथो पर रख दिए, मा की आर्द्र आखें हमारी नजरो मे तैरने लगी, मुझे जब वे आखें याद आती है तो आज मा के चेहरे पर उन निगाहो की परछाईया तलाशता हू, न जाने क्यू हर बार निराशा ही हाथ लगती है।

कुछ परिवर्तन आ गया था एक समय के लिए, एक तारीख के कार्यक्रम छोटे होते चले गये, सब्जिया दस तारीख तक ही आ पाती, पर पिताजी ही थे जो सदा हँसी-खुशी जीवन बिताने का सम्बल बने रहे, रात को मेरी नीद खुलती तो देखता कि दिन भर के थके हारे पिताजी आफिस का काम करने मे जुटे हैं, चेहरा कुम्हलाया हुआ और आखो मे निराश सपने, मैं समझ नही पाता था कि पिताजी का असली चेहरा कौनसा है? दिन भर हँसते रहने वाला या रात का गमगीन उदास चेहरा।

पिताजी की तरक्की हुई, पिताजी के दोस्त कहते, यह उनकी जी-तोड़ मेहनत का परिणाम है, पर मां नही मानती, कहती कि ये लक्ष्मी पैदा हुई है हमारे यहा, सब इसी का प्रताप है, तरक्की होते ही मा ने रामायण पाठ करवाया, पासपड़ोस की सारी महिलाए आई और सबने सोना को आशीर्वाद दिया, पैसे भी दिए, कुछ दिनों तक मैं भैया अपने को उपेक्षित समझते रहे।

भैया कहता, 'आने दो एक तारीख, पिताजी से इस बार जोरदार पार्टी लेंगे, सोना थोड़ी चल सकेगी हमारे साथ, सिनेमा देखेंगे और आइसक्रीम भी खाएगे, वो क्वालिटी वाली' मैं खुश होता।

एक तारीख हुई, शाम भी आई पर पिताजी नही आए, शर्मा अकल के यहा फोन पर आया कि आफिस के काम रुक गए है, रात को देर हो जाएगी, उस शाम मा की बनाई सारी रोटिया रखी रही।

पहली बार ऐसा हुआ कि हमने पास के गिरजाघर मे बजते रात के बारह घण्टे सुने, पिताजी आये लड़खड़ाते से। मैंने आखे बन्द करके सोने का उपक्रम किया, पहली बार मैंने मा को पिताजी से लड़ते देखा, पिताजी पीकर आए थे और मा को सफाई दे रहे थे...

'सरला, समझने की कोशिश तो करो।'

'अब समझने को रह क्या गया है?'

'वो'' वो—दोस्तो ने तरक्की की पार्टी ली और वही थोड़ी-सी'''

'क्यो नही' यहा तुम्हारे लाड़ले भूखे बैठे है और तुम'''

'अच्छा' पिता जी को आश्चर्य हुआ, वो हवे उठाकर खाना खिलाना चाहते थे

पर मा ने रोक दिया, शायद वो नहीं चाहती थी कि हम पिता जी को उस मुद्रा मे देखें, पर हम देख चुके थे, और मुझे लगता है कि वही बिन्दु था जहां से एक चतुष्कोण शुरू हुआ जिसकी चारों भुजाएं मिलकर एक मकान बनाती थी, पर एक दूसरे से दूर-दूर, कटी हुई।

समय बीता, हम बड़े हुए, सोना पांच साल की हो गई और पिता जी ऑफिस के उच्चाधिकारी। उनके काम बढते गए और हम उनसे दूर होते गए, एक तारीख का अब भी इन्तजार रहता, इस दिन हमें पॉकिटमनी मिलती, मां हिदायतें देती कि इसे ढग से खर्च करना, यह नही कि महीना खत्म होने से पहले ही और पैसे मागने लगो।

पिताजी के दर्शन देर रात गए तक हो पाते, मा की मित्र-मण्डली अलग बनने लगी। भैया कॉलिज मे हो गया था, उसका पता नही चलता, दिन भर कहा रहते, मैंने अपने घरेलू शौक पाल रखे थे जिनके साथ खिलवाड़ करता रहता।

ऐसे मे हमने एक घर खरीदा, घर मे सोफा आया, रेडियो, टेपरिकॉर्डर आया, घर के बाहर लॉन हो गया, लॉन मे स्कूटर खड़ा रहने लगा, फिर तो कूलर, फ्रिज, डाइनिंग टेबल सभी चीजें आई, इतना सब हुआ तो घर को देखने वाले भी आए, पिताजी के पैसे की और मा की सरुचि की प्रशसाएं की गई, मा की सहेलियाँ बढ़ती गईं और कभी ताश और कभी किटी पार्टी जैसे शौक पलने लगे।

भैया भी अपने दोस्तों मे मस्त रहते, मुझे लगता कि मेरे पिताजी मशीन हो गए है, रुपया कमाने की मशीन, भैया फिल्मी हीरो हो गया है, और मा अब मा न रहकर ऑफिसरनी हो गई है, मैं किनारे पर खड़े पेड़ की तरह इन लोगों को तेज लहरों मे तैरते देखता रहा।

मा ने सोना की ओर ध्यान देना भी छोड़ दिया मै ही उसे खिलाता, उससे खेलता, उसके मन मे पल रहे मां के प्रति अलगाव से कभी-कभी मुझे डर लगता, सोना कहती—

'गुड्डू भैया, मा की सहेलिया बहुत गन्दी है।'

'क्यू ?'

'देखो न, हमेशा मां को घेरे रहती हैं, अब तो मा मुझे प्यार भी नही करती।'

'नहीं सोना, ऐसा नही कहते, मां नही करती तो न करें, मैं तो हू, बोल आइसक्रीम खाएगी ?'

और मैं उसे लेकर बाजार चला जाता, सोना अपने ही घर मे अपनी अस्मिता खो बैठी थी, रात को उसके कमरे में जाता तो देखता, वो टुकुर-टुकुर शून्य मे देख रही है।

'भैया, मुझे डर लगता है, अकेले कमरे मे सोते, तुम मेरे पास ही सो जाओ न।'

मैं उसे समझाना चाहता कि इस दुनिया के हर आदमी को वरद उसे अपनी जगह खुद ही बनानी पड़ेगी, कौन साथ देता उसका इस लम्बे सफर मे जहां हम सभी साथ-साथ चल रहे हैं, पर एक दूसरे से अजनबी, खामोश-खामोश, अपनी-अपनी आकाक्षाओं

को कन्धो पर लादे, पर वो क्या समझती, चुपचाप बैठ मैं उसका माथा थपथपाता, धीरे-धीरे सोना सो जाती।

मा की सहेलियाँ चली जाती, पिताजी का खाना डाइनिंग टेबल पर पडा रहता, देर से आते पिताजी, कभी खाते कभी बिना खाए सो जाते, मैं अपने कमरे में पैरो की आहट से परिस्थितियो को सुनता, सवादो की स्थिति तो आ ही नही पाती थी।

घर धीरे-धीरे चुपघर होता गया, भैया नहाकर गुनगुनाते आते, नाश्ते की टेबल पर पिताजी को देखते ओर अखबार मे डूब जाते, शायद सोचने लगते कि क्या बोला जाए? कभी पूछ बैठते, 'पढाई कैसी चल रही है।'

'ठीक है।'

इस सवाल और आने वाले दूसरे सवाल के बीच का अन्तराल पाटना मुश्किल हो जाता था, सिर्फ भैया के लिए, ही नही, सभी के लिए मां न बोलने के बहाने ढूढती, 'टेप रिकॉर्डर किसने खराब किया' यह सवाल हम तीनो को तो चुप कर ही देता, मा और हमारे बीच सवादो की सभावना को कुछ दिनो के लिए आगे खिसका देता।

तब सोना के लिए लाया था मैंने ये कुत्ता, हमारा सिली, इसे भौंकने की बड़ी आदत थी उन दिनो, भूख लगी हो या प्यास, सिली भौकता, सोना को तो बहुत प्यार करता, इस घर में चुप्पी का जो अजगर अलसाया पडा हुआ था सिली के आने से जागा।

ये तो सोना की ही जिद् थी सिली पल गया, इस अजगर का बस चलता तो निगल जाता सिली को भी, सिली के खामोश होते ही घर खामोश हो जाता, मैंने उस स्थिति से बचने के लिए उसके गले मे घुघरुओ की जजीर पहना दी।

हम सब अलग-अलग दीवार हो गए थे जिन पर हमारा चुपघर खड़ा था और इस चुपघर के मध्य सेतु बन कर आया था सिली, सोना अक्सर उससे खेलती रहती, मा उसे खाना डाल देती, मैं उसे घुमाने ले जाता और भैया उसे नए-नए करतब सिखाते।

अन्दर ही अन्दर हम सब यह महसूस करने लगे थे कि जो स्थितिया बिगड गई हैं, जिन सम्बन्धो मे जग लग गया है, उनके लिए सिली हल बनकर सामने आया है, हम सब जो अपनी-अपनी शर्तों पर अपनी जिन्दगी जी रहे थे, इस एक कुत्ते के लिए समझौता करने को तैयार थे शायद सभी अपनी-अपनी परेशानियो से ग्रस्त होकर एक दूसरे मे समा जाना चाहते थे, पर जरूरत सिर्फ शुरुआत की थी।

शायद किसी दिन यह सम्भव भी हो जाता, पर सिली, माने बेवकूफ, धीरे-धीरे हम उसका चुप होना देखते रहे, घुघरु वाली जजीर के सारे घुघरु तोड़ डाले, खाने के लिए उसका भौंकना बन्द हो गया, जो कुछ मिलता खा लेता, हम सब बदलना चाहते थे, नही बदल सके। सिली शायद न बदलना चाहते हुए भी बदल गया था।

आज सिली को पांच साल हो गए हैं इस घर मे, सोना पडोस के बच्चों के साथ खेल रही है, भैया कॉलेज गए हुए हैं, माँ ताश खेलने के बाद थकी-हारी सो रही है, सिली सब कमरो मे चुपचाप चक्कर लगा कर मेरे कमरे मे आ जाता है, और कमरे की छत को ताकता रहता है चुपचाप।

०००

कहानी की राख

• सुमेरचंद्र शर्मा(?)

•••

[illegible] मन में [illegible] के अन्दर आई। उसने कठ से [illegible] पूछा—'कहिए ?'

प्रकाश एक क्षण चुप रहा। उसने पत्नी पर एक गहरी नजर डाली। जूड़े से बाहर निकली लटें, आँखों के नीचे झाँकता [illegible] और उसका आँचल। साथ, पसीने व मसाले से सना—बिल्कुल मुचमुचा! हालांकि उसको [illegible] वर्ष तो विवाह हुए कुछ बहुत गई। किन परिस्थितियों के बीच वह अब तक [illegible] हुई है और किस मनोदशा में वह जी रही है, उसकी आँखें [illegible] और बहुत कुछ कह देती हैं। मुझे जानने की कभी जरूरत ही नहीं पड़ती।

उसके प्रति अधिक संवेदनशील होना स्वाभाविक है। अतः उसने धीरे से पूछा—'व्यावहारिक [illegible] तुमने कहीं देखा है?'

'क्या ?'

पत्नी की आँखों में एक तीखी, एक मार्मिक खीज झलक आई। उसने तेवर बदल-कर तड़ाक् से कहा—'मुझे नहीं मालूम।'

'तो फिर यहीं कहीं होगा।'

सकपकाई-सी आवाज में बोलकर प्रकाश जैसे खामोश हो गया। फिर भी वह पुस्तकों के ढेर में शब्दकोश को खोजने का निष्फल प्रयास करने लगा।

इस दौरान कान्ता की निरीक्षण करती हुई दृष्टि मेज पर स्थिर हो गई। अचानक उसका चेहरा अत्यन्त कठोर एवं निष्ठुर बन गया। लगातार परिवर्तित होने वाली भावनाओं में अब कुछ भी वैसा अक्षुण्ण तथा एकनिष्ठ नहीं रह सकता, जैसा पहले था। गम्भीर स्वर को सहज बनाकर उसने प्रश्न किया—'क्या कहानी लिखी जा रही है ?'

अजीब प्रश्न है। प्रकाश हठात् चौंकता है। अगले क्षण वह किसी सोच में डूब गया। लग ऐसा रहा है कि वह पत्नी के इस प्रश्न को सुनकर अप्रसन्न ही नहीं, क्षुब्ध भी है। भला कहानी लिखना भी कोई सब्जी पकाने या बर्तन धोने जैसा साधारण और मामूली काम है। तभी तो इस प्रकार का अव्यावहारिक एवं अनावश्यक प्रश्न पूछा जा रहा है। इसके अन्तराल में लेखक की कोमल भावनाओं का कटु तिरस्कार है। उसकी

स्वतन्त्र इच्छाओं, उसके प्रतिभाशाली विचारो की यह दारुणा एव अवांछनीय उपेक्षा है।

सम्भवत. पति के मनोभावो को कान्ता भलीभांति समझ गई। उसकी वर्तमान भावभगिमा से यह स्पष्ट है। अपनी अस्थिरता और बेचैनी को दबाकर उसने केवल इतना भर कहा—'अच्छा !'

और वह उतावली मे वापिस लौट गई।

अशान्त हृदय मे उठने वाले क्षोभ के बवण्डर पर प्रभुत्व पाने के प्रयत्न मे प्रकाश पत्नी की पीठ को एकटक देखता रहा।

कल की ही तो बात है।

कान्ता ने बडी विरक्ति तथा वितृष्णा से नाक-भौं सिकोड कर पति से कहा था—'कितनी बार मैंने तुमसे कहा है कि समय-असमय इस तरह कहानी लिखने मत बैठा करो। पर मेरी सुने कौन, माने कौन ! यह निठल्लापन मुझे कभी रास नही आया। लो, इतनी कहानिया छप चुकी हैं और कितने ही उपन्यास प्रकाशित होकर बिक गये हैं, मगर पारिश्रमिक के नाम पर ऊट के मुह में जीरा ! गुजारा करना तो दरकिनार, उससे एक वक्त की रोटी भी नही चलती। ऐसी बेगार करने से क्या फायदा ? कैसी दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना है कि इस देश मे मेहनत करने वाला भी भूखा मरता है, या अभाव और गरीबी मे जिन्दगी गुजारता है।··· अब मेरी समझ में नही आता कि जिस मेहनत से कोई लाभ न हो, उसमे क्यो समय नष्ट किया जाये ?···इसमें क्या बुद्धिमानी है ?'

सवाल पूछकर उसने बडी बेदर्दी से प्रकाश की आखो मे झाका ! प्रकाश एकदम मानो सन्नाटे मे आ गया। उसकी लाचारी, उसकी निदारुण बेबसी अब कान्ता के समक्ष अप्रकट नही रह सकी। अपनी असहायावस्था का यह बोध अत्यन्त पीडादायक और बेहद तकलीफदेह है।

इसके पश्चात् उनके मध्य मौन का लम्बा अन्तराल रहा। विवश हो श्रीमती जी ने ही पुन· उदास कण्ठ से अपना पुराना राग अलापा—'कई महीनो से पूरे घर में जबर्दस्त तगी चल रही है। अभाव की यह दशा और दरिद्रता की ये परिस्थितियां दिन-प्रति-दिन विषम होती जा रही है। निकट भविष्य मे इनके समाप्त होने की कोई सम्भावना नजर नही आती। तुमको भलीभांति ज्ञात है कि छोटा बच्चा कई दिनों से बीमार है। उसका ठीक से उपचार हो नही पाता। इसके अतिरिक्त गाव से बाबू जी के पत्र भी आते रहते हैं। उन्हें भी प्रत्येक माह खर्चे के लिये एक अच्छी खासी रकम चाहिये। इस बारे में कुछ तो करना ही पड़ेगा। किन्तु तुम्हारी यह नकारात्मक चुप्पी कुछ समझ मे नही आई।'

बस कान्ता का गला अन्त मे कहते-कहते अपने आप अवरुद्ध हो गया।

प्रकाश क्या उत्तर देता ! वास्तविकता का यह अनावृत रूप कितना भयानक, कितना खतरनाक है—इससे वह सर्वथा अनभिज्ञ नही है। भला इस वस्तुस्थिति को अस्वीकार करने से भी क्या लाभ ! वैसे यथार्थ का भी अपना एक यथार्थ होता है—

सुखान्त और दुखान्त से परे। उसका सामना उखड़े-उखड़े मन से नही कर सकते। यह सक्रिय जीवन समाप्त होने के निराशाजनक संकेत हैं। अब जो जिम्मेदारियां जाने-अनजाने में ओढ़ ली हैं, उन्ही से नजात पाना है। यह काम जितनी शान्ति, जितनी सूझी और जितनी दक्षता से हो सकता है—बेहतर है। मन को शान्त रखने के लिये छोटी-छोटी बातों में सुख ढूढ़ने पड़ते हैं, यहां इन्ही का अभाव है। प्रज्ञा-शक्ति भी कभी-कभी कुण्ठित हो जाती है और फिर वह शिव-अशिव, सद-असद में भेद करना भूल जाती है। आत्मदृढ़ता की कमी बहुत कुछ होते हुये भी आदमी को दीन-हीन बना देती है। ये कुरूप और और रुग्ण जीवन के अभिशाप हैं।

लेकिन यही आंखें बन्द कर लेने से कभी अन्धेरा हुआ है, प्रकाश बहुत गहरे में उतर कर सोचने की कोशिश करता है। उसी समय पत्नी का कड़ुवाहट से भरा स्वर सुनाई पड़ा।

'…मैं बहुत बार अनुरोध कर चुकी हू कि तुम कही छोटी-मोटी नौकरी करके गृहस्थी की गाड़ी को सुचारू रूप से चलाओ। तुम्हारी अच्छी जान-पहचान है, मेल-मुलाकात है। अगर कोशिश करो तो कही सुगमता से क्लर्की या अध्यापक का तुम काम पा सकते हो। यह भी नही हो तो फिर ट्यूशन कही नही गई। तुम्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान है, दो-चार तो चुटकी बजाते ही मिल सकती है…। यह कोई मुश्किल काम नही…।'

पत्नी के इस आग्रह के विपरीत प्रकाश कुछ दूसरी दिशा की ओर सोच रहा है। उसका यह अर्थ नही कि वह कान्ता के कथन से बिल्कुल अप्रभावित है। उसका भाव-विह्वल स्वर उसके अन्तस को कही भीतर गहरे तक छू जाता है।

आज वह राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्याकाश का एक देदीप्यमान गौरवशाली नक्षत्र है—इस प्रकार की प्रशंसापूर्ण टिप्पणियां प्राय. सभी पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, समीक्षक तथा अन्य सहयोगी लेखक लिखते रहते हैं। परन्तु खेद है कि आज देश मे कोई नया लेखक अपनी स्वतंत्र अस्मिता को लेकर पनप नही सकता। साहित्यसृजन पर आश्रित रहकर वह कभी भी जीविकोपार्जन कर नही सकता। सब जगह दलबन्दी या स्वार्थपूर्ण धड़ेबंदी चल रही है। जातियवाद और क्षेत्रियवाद सब पर शनै-शनै. हावी हो रहा है। विशेषकर पुरस्कारों के सम्बन्ध मे इसी दृष्टि से निर्णय होता है। कितने दुःख की बात है कि आज पारिश्रमिक के नाम पर लगभग सूखा जवाब मिलता है। शायद व समझते हैं कि लेखक हवा का सेवन करके ही जीवित रहते हैं। यह शिकायत नही, हकीकत है। कला-पारखी केवल रचना की भली-बुरी समीक्षा करके रचनाकार के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं। उनमें भी वे लोग जो निम्नकोटि की धड़ेबन्दी और इस तरह की संकीर्णताओं से मुक्त हैं। कदाचित् उनके कर्तव्य की इतिश्री इसी मे ही है। कुछ इसी प्रकार का बर्ताव प्रकाशक भी करते हैं। सम्भवतः वे लेखकों को काठ का उल्लू समझते हैं, जिन्हें भूख-प्यास कभी सताती नही। ऐसा नहीं है कि वे लेखकों की दुरावस्था और विषम स्थिति से नितान्त अपरिचित हैं। क्या हुआ, कभी-कभी इस जड़ता के अन्ध-

कार को छोटे-छोटे दिये जलाकर मिटाने का यत्न करते है। किन्तु इनसे सवेरे की आहट कतई सुनाई नही देती।

इसका यह बिल्कुल मतलब नही कि आज का लेखक सघर्ष की जीवटता से शून्य है। इस अन्याय, इस विरोधाभास के विरुद्ध उसके अन्दर कुछ चिनगारिया है, जिनका विस्फोट यदा-कदा होता रहता है। लेकिन उसमे वह आग और लावा कहा है जो इस अन्याय के जगल को जलाकर एकदम स्वाह करदे।

यह सही है कि आज जीवन इतना जटिल और पेचीदा हो गया है कि सामान्य निष्कर्षों पर भी सीधे ढग मे पहुचना मुश्किल-सा है। लगातार परिवर्तित होने वाली परिस्थितियो मे भी आस्था भी वैसी ही अक्षुण्ण एव एकनिष्ठ बनी रहेगी, इस पर विश्वास नही किया जा सकता। पहले-पहल जो आदर्श आकृष्ट करते हैं, वे ही कालान्तर मे विषय तथा घुटनमय वातावरण मे उलटकर रह जाते हैं। जैसे आदर्श का स्थान महत्वाकाक्षा तथा आडम्बर ले लेते है। यहा घृणा भी प्रशसा मे बदल जाती है। कम-से-कम ऐसा माहौल रास आने लगता है। गले तक भरी इस महत्वाकाक्षा से अब तुष्ट एव गर्वित अनुभव करते है। इससे अपने आदर्शों से स्खलित, पस्त तथा कुण्ठित आज का मनुष्य बिल्कुल खोखला नजर आता है, जो अस्वाभाविक नही लगता। इस विचित्र, इस त्रासद स्थिति मे यदि वह समझौता-परस्त और सुविधाभोगी बन जाये तो आश्चर्य कैसा? इसका नशीला स्वाद और अन्ततोगत्वा सबको आसानी से छलता है।

यही वजह है कि आजकल कई लोग अपनी मरजी के खिलाफ कुछ ऐसे भी कार्य [illegible]
[illegible]
भावनाओ को कुचलते हुये वही क्लर्की या सेल्समैन का काम करते हैं। मुशीगिरी से से लेकर प्रूफरीडरी तक उनके लिये जायज है। अत जहा उनकी प्रतिभा विकल हो आसू बहाती है, वहा कल्पना और विचार घास की ढेरी के समान धू-धू करके जलते हैं। एक साधारण दफ्तर के बाबू अथवा इस किस्म की नौकरी करने वाले की कीमत ही क्या है? उसकी हैसियत ही क्या?···वह भी एक ख्याति प्राप्त लेखक के मुकाबले···? न समाज मे वैसी प्रतिष्ठा, न काम के प्रति वैसी निष्ठा और न घर मे वैसी सुख-शान्ति! सर्वत्र अभाव, अपमान एव अशान्ति! इसके फलस्वरूप जीवन मे व्यापक असन्तोष तथा विक्षोभ! एक पल का चैन नहीं। मानो सम्पूर्ण जीवन बेआस, बेसहारे एक भयानक दावानल की चपेट मे आ गया हो। यह कहना सर्वथा असगत नही होगा कि कुछ इसी प्रकार की दयनीय एव हृदयद्रावक स्थिति इस महान् देश के अध्यापक वर्ग की भी है जो जटिल-से-जटिल प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी ज्ञान की ज्योति जलाये बैठे हैं। चाहे इसके पुरस्कार-स्वरूप इनका अपना निजी जीवन भले ही लड़खड़ा रहा हो। उन्हें तो उसका भार ढोना है निःशब्द और बेजुबां बनकर। पता नही उनका आत्मगौरव कहा लुप्त हो गया? कहा ओझल हो गई वह भस्मावृत चिनगारी? ज्ञान नहीं। विद्रोह और प्रतिकार करने का साहस कहा निःशेष हो गया?

रही कान्ता ! वह भी उसी वर्ग की एक सामान्य प्रतिनिधि है ! किसी प्राईवेट स्कूल में वह डेढ़ सौ रुपये मासिक के बदले अपने कुन्दन-से जीवन का बलिदान दे रही हैं। वह भी अपनी किसी दुर्दम्य और अभूतपूर्व मजबूरी के कारण। यह दुबली-पतली काया—उस पर पूरी गृहस्थी का सामर्थ्यहीन बोझ ! विश्वासहीनता के अन्धेरे में भटकते हुये अनेक प्रकार की झंझटें, सन्दर्भ शून्य माहौल में एक अदना-सा बीमार बच्चा ! एक स्वाभिमानी लेखक पति, जिसकी आय का कोई स्थायी स्रोत नहीं। इस असन्तोष एवं आक्रोश का असली कारण यही है। दूर तक फैले सागर के बीच उठती-गिरती लहरें विराट जल-राशि में विलीन होना नहीं जानतीं। जलसमाधि क्या होती है, उन्हें कहा पता ?

'···अवस्थी भाई साहब कह रहे थे कि नगरपालिका के कार्यालय में एक जगह खाली है क्लर्क की। अगर तुम्हारा वहां काम करने का इरादा हो तो वे तगड़ी सिफारिश कर सकते हैं। वैसे वहां यह पोस्ट टेम्परेरी है, पर बाद में वह परमानेन्ट हो जायेगी।'

श्रीमती जी का फटा-फटा सा स्वर ध्वनित हुआ। इससे प्रकाश को एक झटका-सा लगा। उसके विचारों की शृंखला अकस्मात् टूट गई। पत्नी ने उसे जिस काबिल समझा है, यह उसका ज्वलन्त प्रमाण है। यह उसका अपना दृष्टिकोण है। अपना मूल्यांकन करने का तरीका है।

वास्तव में अवस्थी का नाम सुनते ही क्षण भर में उसके अन्दर कसाव-सा आ जाता है। सारा चित्त तनाव ग्रस्त ही नहीं; विषाक्त भी हो जाता है। इस अस्थिरता का एक विशेष प्रयोजन है। इस कारण हृदय में रोष एवं जुगुप्सा की ज्वाला धीरे-धीरे सुलगती है और अन्त में चेहरा सख्त हो जाता है।

यह प्रतिक्रिया नितान्त स्वाभाविक, नितान्त अपेक्षित है। संघर्षरत लहरों में कहीं न कहीं रोशनी होती है, किन्तु यहां जुगनू भी नहीं चमकते। सर्वत्र सूचीमेघ अन्धकार है।

अवस्थी प्रकाश का मित्र है, एक सहृदय पड़ोसी है, वह इसका सहपाठी भी रह चुका है। छात्र जीवनकाल में वह सुपाठ्य कवितायें लिखा करता था। भव्य भावनाओं से ओतप्रोत और दिव्य विचारों से सम्पृक्त। सुनकर घनी देर तक श्रोतागण झूम-झूम उठते ! कुछ ही समय में उसने आश्चर्यजनक ख्याति अर्जित की। एक सफल कवि का गरिमा-मण्डित व्यक्तित्व का थोड़े से अरसे में ही निर्माण हो गया। वातावरण की कड़वाहट और व्यवस्था का सन्तुलन उसमें अशेष आक्रोश भर गया। यह क्रूर, असन्तोष उसकी कविताओं में बराबर अभिव्यक्त होने लगा। उन दिनों भ्रष्टाचार, सड़ी गली मान्यताओं तथा सामाजिक अन्याय के खिलाफ खुलेआम इसका ओजस्वी स्वर मुखरित होने लगा। क्रान्तिकारिता का यह जोश एक बार इतना बढ़ा कि प्रकाश विधान-सभा भवन में सारी व्यवस्था के विरुद्ध पर्चे फेंककर साहसपूर्वक गिरफ्तारी देने को आमादा हो गया। सच में यह विद्रोह असंगत और अनुचित नहीं लगा। सब लोग उसके इस आवेश से, इस तीखेपन से स्तब्ध थे। ऐसा प्रतीत होता था कि यह लड़का जरूर कोई न

कोई गुल खिलायेगा और समूचे प्रान्त में तहलका मचा देगा। कई वर्षों तक वह कवि सम्मेलनों का आकर्षक केन्द्र रहा। उसके मधुर किंवा जोशीले कण्ठ की पुकार सुनकर जन-समुदाय उत्सुक हो उमड़ पड़ता। उसकी आवाज में कशिश होती और वह सबको अपने इस जादू में बांधकर रख लेता।

घर में केवल एक बीमार मां है, जिन्हें पेचिश की पुरानी शिकायत है। एक तो वृद्ध अवस्था और दुर्बल शरीर उस पर आंखों से कम दिखाई देता है। चलने-फिरने में एक तरह से असमर्थ, अशक्त !

अक्सर बेटे के निकम्मेपन और बेकारी को लेकर सदैव कोसा करती है। कहीं नौकरी-चाकरी या काम धंधा बिल्कुल नहीं करता। यह उनका शिकवा-गिल्ला है। बस घर में दिन-रात कलह और अशान्ति रहती है। कभी-कभी वे एकदम उदास एवं असहाय हो जाती हैं, उस समय उन्हें धैर्य प्रदान करना कठिन है।

परन्तु एक दिन अवस्थी जीवन बीमा निगम के कार्यालय में नौकर हो गया। कालान्तर में तरक्की करके फील्ड-ऑफिसर बन गया। अब उसके पास सब कुछ है। भौतिक सुख-सुविधाओं के रूप में एक छोटा-सा घर, सुन्दर और सुशील पत्नी तथा बच्चे, मोटर-साईकिल, फ्रिज और रूमकूलर भी घर में आ गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक सुखी, सन्तुष्ट और सम्पन्न परिवार है उसका ! यद्यपि अवस्थी के साहित्यिक अभिरुचि से परिपूर्ण जीवन का इस प्रकार अन्त होते देख प्रकाश को अत्यन्त दुख हुआ है—क्लेश हुआ है परिस्थितियों के समक्ष इस आत्मसमर्पण की उसने तीव्र एवं कटु शब्दों में भर्त्सना की है। इस साहसहीन पलायन पर उसकी यह उग्र मनोभावना अकल्पित है—अप्रत्याशित है। उसमें एक घिनौना स्वार्थ आ गया है। यह जाहिर है। उसके आदर्शवाद, उसके व्यवस्था को बदल डालने वाले संकल्प का अब देखते-देखते दाह संस्कार हो गया। वह भी उस मशीन का एक कामचलाऊ पुर्जा बन गया जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से समाज के अन्दर शोषण, अन्याय तथा जुल्म का प्रदूषण फैलाती है। इससे सब क्षुब्ध हैं और वे इस पर अफसोस प्रकट करते हैं कि जिसके पास मूल्यों का आधार ही इतना थोथा है, वही ह्रासोन्मुख समाज की व्यवस्था का सहभागी बनता है। कहां गया वह उसका पहले वाला व्यक्तित्व एवं कृतित्व ? विश्वासपूर्वक यह भी नहीं कह सकते कि कौनसा रूप झूठा था और कौनसा सच्चा ? अब तो अवस्थी अपनी अफसरी के अहंकार में डूबा भ्रष्टता के उच्च शिखर पर खड़ा है। इस तथ्य से बेखबर कि वहां से लुढ़कने के पश्चात् अस्थिपंजर का भी अस्तित्व तक समाप्त हो जाएगा। इस क्षण उसके कानों में मानवता की आहट भी सुनाई नहीं देती।

माना कि भावुकता से जीवन नहीं चलता। अतीत के गहरे लगाव भी आगे चलकर सहायक सिद्ध नहीं होते। जिंदगी की उपलब्धियां भी प्रायः निर्मम बनकर ही प्राप्त की जा सकती हैं। परन्तु इस जीवन-दर्शन का यह अर्थ बिल्कुल नहीं कि व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ के लिए संवेदनहीन और बहशी बन जाय ! अनजाने में अथवा जान-बूझकर वह समाज में ऐसे विषैले अंकुर बो दे, जिसमें समस्त मूल्यगत मर्यादाओं तथा

नैतिकताओं का सत्यानाश हो जाय। अब रह गये सिर्फ भग्नावशेष ! उनकी धुंधली आकृति किसी खतरनाक कुहासे में निगल जाती है। इस विकृति को लेकर वह क्या करेगा ? इससे न तो समाज का उत्थान होगा और न ही स्वयं की आत्मोपलब्धि !

पत्नी के इस प्रस्ताव के प्रति प्रकाश का अवहेलना और अवज्ञा का दृष्टिकोण अपनाना स्वाभाविक है। तो भी वह अपना निचला होठ काटकर आवेशमुक्त उत्तेजना को छिपाना चाहता है। पर सफल हो न सका। उसने व्यंग्यपूर्वक पत्नी से पूछा—'क्या मैं सिर्फ क्लर्की करने के लिए पैदा हुआ हू ?'

इस प्रश्न से कान्ता और चिढ गई उसने तीखे कण्ठ से ईंट का जवाब पत्थर से देना शुरू किया। 'तो फिर बताइये, तुम क्या करने के लिए पैदा हुए हो ?'

किसी अन्य बात और गुण में कान्ता ने अपना मानसिक तथा बौद्धिक विकाश किया हो या न किया हो, लेकिन वह गृहकलह मे पूर्णतया दक्ष है। इस वजह से प्रकाश थोड़ा-थोडा डरता भी है। उसने यदि अपने गुस्सैल और विकराल स्वभाव का परिचय देना आरम्भ किया, तो सम्पूर्ण भद्रता नष्ट हो जायेगी। शिष्टाचार और सभ्य आचरण का तब कहीं पता भी नही चलेगा। अब पति ने इसका कोई उत्तर देने की आवश्यकता नहीं समझी। इस वक्त मौन धारण कर लेना ही एक कारगर विकल्प है।

इस स्पष्ट उपेक्षा का परिणामस्वरूप कान्ता का धीरज एकाएक विचलित हो गया। वह झल्लाकर कर्कश कण्ठ से बोली—'इसका मतलब यह है कि तुम मेरी…मेरी माने अपनी पत्नी की कमाई पर…पर…।'

'कान्ता…।'

जैसे प्रकाश का पुरुषोचित सुप्त तेज हठात् जाग्रत हो गया, किन्तु कान्ता भी कम नहीं है। वह सहसा लडने के लिये सन्नद्ध हो गई—'चिल्लाओ मत। तुम…अब मुझ पर आश्रित हो, मैं तुम्हारे ऊपर नही। रोब और धौंस किस बात की जमाते हो, बोलो…?'

प्रकाश की तो बोलती बन्द। वह एक तरह से बचाव वाले गूंगेपन का जल्दी ही शिकार हो गया। वैसे गूंगेपन भी कई तरह के होते हैं। उनमें से एक जन्मजात और दूसरा परिस्थिति प्रदत्त ! यह दूसरे प्रकार का गूंगापन आदमी के लिये ज्यादा भयावह और तकलीफ देते हैं। बहुत कुछ कहने के लिये आदमी भीतर से उफनता रहता है। अन्दर में आंधी-सी चलती रहती है, बवण्डर उठते रहते हैं। परन्तु चाहकर भी मुंह नही खोल पाते। होठों पर ताला-सा लग जाता है। जहां सौम्यता और आत्मीयता क्रूरता में बदल जाती है, वहां कोई क्या करे !

पति की तरफ से कोई जवाब न पाकर कान्ता कम उत्तेजित नहीं हुई। कुछ देर ठहरकर वह क्रोधावेश में फिर बोली—'अगर आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव का इतना ही अभिमान है, तो फिर…तो फिर…!'

झुंझलाहट में वह अन्तिम वाक्य ठीक से बोल नहीं पाई। बस वह बड़बड़ाती हुई कुढ़कर पति के सामने से चली गई। अभी तक उसके नेत्रों में क्रोध और घृणा के

उसमें विद्रूपता से भरी दारुणता स्पष्ट झलक रही है।

इस मर्मान्तिक प्रहार से अपने में प्रकाश तिलमिलाकर रह गया। यह आघात असहनीय है। अधिकार-शून्य सत्ता का एक अशक्त अधिकारी। जैसे सबकी दृष्टि में कर्तव्यच्युत, उत्तरदायित्व-रहित और आत्महीन!

'ओह! न जाने क्या सोचने लगा हूं।' प्रकाश को इन व्यर्थ के विचारों से हठात् वितृष्णा-सी होने लगी। वह आत्मभर्त्सना के स्वर में मन-ही-मन कहने लगा —'बैठा था कहानी लिखने और पता नहीं क्या-क्या उल्टा-सीधा, ऊल-जलूल सोचने लगा। छोड़ो इन सबको···और···और··· ।'

स्वेच्छा से मुक्ति की सांस लेकर वह एकाग्रचित्त हो चिन्तन-मनन में गुम हो गया। अब कहानी का केंद्रिय भाव ही नहीं, पूरा प्लाट दिमाग में स्पष्ट होने लगा। सोयी हुई चेतना फौरन जाग गई। पात्रों के माध्यम से उसकी प्रेरक और प्रभावशाली रूपरेखा स्वतः बनने लगी।

इसी क्षण श्रीमती जी का व्यस्त, पर प्रखर कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—"तुम तनिक आकर नन्हे के पास बैठो, मैं तब तक रसोई तैयार कर लूं। उसे अभी पालने में सुलाकर आई हूं, फिर भी वह घड़ी-घड़ी नींद से चौंक पड़ता है। लगता है उसकी तबीयत अच्छी नहीं। यदि पालना चलता रहेगा, तो फिर वह चैन से कुछ देर सोता रहेगा, वरना···।'

प्रकाश कहानी लिखने में इतना तल्लीन और ध्यान मग्न है कि उसने कान्ता की बात सुनी—अनसुनी करदी। वास्तव में इस तन्मयता का एक प्रमुख कारण है। कहानी लिखते-लिखते वह एक ऐसे मार्मिक स्थल पर पहुंच गया, जिसकी सहज ही उपेक्षा करना असम्भव है। यही तो लेखक की लेखनी का सम्पूर्ण चमत्कार देखने के योग्य है। उसकी कला रसपान करके गौरवान्वित होती है। इस कलम के जादू द्वारा फिर चतुर्दिक रमणीक आनन्द अथवा कारुणिक चेतना की सृष्टि होने लगती है, जो मानवता का प्रेरणा-स्रोत है। अब उसमें व्यतिक्रम आये तो कैसे? चारों ओर से ध्यान सिमटकर केवल एक उसी बिन्दु पर टिका है। वाक्यों तथा शब्दों के मनोहर परिवेश में कहीं रात की भीनी गंध है, कहीं चन्द्र की रूपहली चांदनी खिली है। कहीं ओस-कणों का नर्म-नाजुक स्पर्श पाकर सन्तप्त हृदय आह्लादित हो रहा है। कहीं धूप के ठण्डे टुकड़े जीवन का उद्घोष कर रहे हैं।

इसी समय धम् से नीचे गिरने की आवाज के साथ-साथ चीखने-चिल्लाने का कर्णभेदी एवं अप्रिय स्वर सुनाई देने लगा। प्रकाश हठात् चौंकता भी है। किसी अज्ञात अनिष्ट की सम्भावना से वह आपाद-मस्तक सिहर उठता है। इस व्यग्र, इस अन्यमनस्क अवस्था से सारा कथानक अपने आप छिन्न-भिन्न होने लगता है। भीरु मन की अन्धेरी कन्दराओं में उसके पात्र कहीं खो जाते हैं। कल्पना के पंख टूट गये और वह आकाश विहारी कपोत की भांति ठोस धरती पर अचानक गिर पड़ा।

वह ठीक तरह सम्भल भी नहीं पाया कि इतने में कान्ता का रोषपूर्ण स्वर

सुनाई दिया। वह उसको सम्बोधित है, यह भली प्रकार ज्ञात हो गया।

'मैंने उस वक्त कहा था न कि तुम जाकर नन्हें के पास बैठो। मगर मेरी सुनी-अनसुनी कर दी। अब देख लो उस लापरवाही का परिणाम! बच्चा पालने से गिर पड़ा है और उसके सिर पर चोट लगी है···!'

प्रकाश की आखों मे भय की छाया तैर गई। कुछ देर के लिये उसके मुंह से आवाज तक नहीं निकली। बस एक अपराधी की भाँति उसकी गर्दन न सह सकने वाली लज्जा और न जाने वाली ग्लानि से अपने आप झुकती चली गई। आखिर आदमी को इतना अन्तर्मना होना भी ठीक नहीं, क्षोभ इस बात का है। एक पथरीला मौन उसके चारो ओर तन गया।

अब पत्नी घन-गर्जन के सदृश्य अचानक बरस पड़ी—'कई बार मैं कह चुकी हूं कि तुम समय देखे बिना लिखने मत बैठा करो। बच्चा पहले से बीमार है और ऊपर से वह पालने से गिर गया। इन सबसे मुसीबत तो मेरी होती है···। तुम्हें क्या?'

इतना कहकर वह घायल नागिन की तरह क्रोधित निगाहों से पति को घूरने लगी। उसमें घृणा एव अपमान का ज्वार है। पता नही सहसा कान्ता को क्या हुआ कि वह अपने बदले तेवर लेकर विवेकशून्य-सी एक उन्माद की मनोदशा में पति की तरफ बढ़ी। अब वह निर्मम बनकर एक बाज के समान कहानी लिखने की कॉपी पर तुरन्त झपटी और देखते-देखते उसे उठाकर जलते चूल्हे में डाल आई।

प्रकाश निश्चेष्ट है, संभ्रम है, अवाक् है। उसके सामने ही उसकी कहानी की अन्त्येष्टि-क्रिया हो रही है। वह धू-धू करके जल रही है, उसमे से कला की लपटें उठ रही हैं। शब्द, वाक्य, कल्पना तथा विचार सारे के सारे एक साथ भस्म हो रहे हैं··· और थोड़ी देर के पश्चात् उसकी राख ही शेष रह जायेगी। राख—कहानी की राख! कला की राख! साधना और तपस्या की राख!

ooo

मेहंदी की मुराद

० आनन्द कौर

०००

जिन्दगी न तो इत्रदान की खुशबू है और न रंगीन सपना। न सरजती संगीत [illegible]

[illegible]

है, आसू से सींची दुख भरी दास्तान है वे न सपने बुनते हैं, न रंगीन दुनिया का घुंघरू ही पीते हैं। मीरां का अतीत कुछ इसी तरह की अटपटी बनावट का है। कभी-कभी उसे लगता है कि उसने एक रसहीन, रंगहीन, गंधहीन जिन्दगी जी है।

आज फिर वह अकेली हो गई है। निपट अकेली। उसने अपनी बेटी को आज ही तो विदाई दी है। शादी के अवसर पर सभी कुछ थे—गाजे, बाजे, रोशनी, आतिशबाजी, मंगल गीत, दूर नजदीक के रिश्तेदारों की मनुहारें, मिठाईयां और मस्त माहौल की रौनक। चारों ओर चहल-पहल और चहलकदमी ने घर को कुछ देर के लिये रंगीन बना दिया था। पर अब सब कुछ सूना-सूना है। कोयल के चले जाने से जैसे बसन्त का वियोग खटकता हो या कि हिरणी के निकल जाने पर जैसे जंगल का विराट एकाकीपन सामने आता हो। कुछ ऐसी ही हालत मीरां की हो गई है।

एक मनहूस उदासी घर के वातावरण को बोझिल बनाये हुये है। अतीत के अध्यायों में खोई मीरां को नींद भला कैसे आवे। रात का तीसरा प्रहर होने को आया पर वह है कि करवटें बदल रही है। बीच में आकर घर की पुरानी नौकरानी रधिया ने कहा भी था। "मालकिन नींद नहीं आती है तो गोली लेकर सो जाओ, सवेरे तबियत ठीक हो जायेगी।" 'नहीं रधिया मैं गोली नहीं लूंगी, तू जाकर सो जा' उसने कहा था और वह एक बार फिर पुराने धागे जोड़ने में लग गई थी।

अपने एकाकीपन की लम्बी यातना का इतिहास एक ओर करके वह उन दिनों को याद करने लगी है जब वह कुंवारी थी। सुहाना सलोना रूप-रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, मोहक सौंदर्य, संगमरमर की मूर्ति जैसी सुघड़ बनावट—लगता था, जैसे वह इस युग की मीरां न होकर जैसे सचमुच की दीवानी मीरां ही हो। और हां थी क्यों नहीं—उसका जन्म मेड़ते के चारभुजा के मंदिर की मीरां की मनौती के कारण ही तो हुआ था। घर वालों ने इसी कारण उसका नाम मीरां रखा था। [illegible] साथ [illegible] को [illegible] [illegible] थी। उसके न तो कोई भाई था न [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible]

सिटी आगे थे फिर यहीं बस गये। मीरां के बड़ी होते-होते उनका रिटायरमेन्ट नजदीक आ चुका था। हार्ट पेशेन्ट तो थे ही—चाहते थे उनके रहते रहते मीरा के हाथ पीले हो जाय। मीरां को पति के रूप में एक सुयोग्य, सुन्दर, स्वस्थ वर मिला था। उसके पति कृष्णकुमार छोटी उम्र में ही पुलिस इंसपेक्टर बन चुके थे।

शादी के पहले छः महिने ही तो उसके जीवन का सम्पूर्ण बसन्तकाल था। किसे पता था कि खनकने वाली चूड़ियां एकाएक टूट जायेंगी। रची हुई मेहन्दी अपना रंग खो देगी। और माथे का गाढ़ा सिन्दूर अकस्मात् पूछ दिया जायेगा। पुलिस-डाकू भिड़न्त में कृष्णकुमार शहीद हो गये—एक वज्रपात-सा हुआ। मीरा ने तो इस जहर का घूट पी लिया पर उसके पिता यह सदमा न सह सके। दूसरे और भयानक हार्ट अटैक ने उनकी जीवनलीला भी समाप्त कर दी।

अब इस ससार में फकत दो प्राणी थे— मीरां और उसकी मा— दोनों विधवाएं, दोनों करुणा की मूर्तियां, दोनों नि.सहाय, लगभग सामाजिक रूप में अपाहिज''मीरा यद्यपि सर्विस कर रही थी पर उससे क्या। सर्विस से गुजारा तो हो सकता था पर सामाजिक सम्बल उससे नहीं मिल सकता था। मीरा को लगा उसमें व मेड़ते की मीरा में जैसे एक अनोखा साथ हो। वह मीरा भी तो जल्दी ही विधवा हो गई थी। उसे भी सामाजिक यातनाए दी गई थी। ससुराल वालों ने जहर का प्याला भी तो भेजा था। और इसके ससुराल वालों ने भी क्या कसर रखी। जब वह विधवा होने के बाद ससुराल गई तो सास ने रोते हुए कहा था—'अब किस मुह से इस घर में आई हो कलमुही मेरे बेटे को तो खा गई। अब किसे खाना चाहती हो?' ससुर ने रूखेपन से कहा था—'मेरे तीन बेटे है—एक-एक महीना किसी के साथ गुजारा कर लेना। रूखा-सूखा जैसा भी मिले खा लेना। पर यहा रहना है तो सर्विस छोडनी होगी। इस घर की रीति यही है। यहां बहू-बेटियां नौकरी नहीं करती। विधवा होने पर घर ही रहती है।' देवरों ने व्यंग्य बाण छोड़े थे। पड़ोसियों ने कानाफूसी की थी सम्बन्धियों ने मुह बिचकाए थे। यह पढ़ी-लिखी है, चार आखो वाली, घर मे काहे को टिकेगी! मीरां को लगा ये सब उसके वैधव्य का मजाक उड़ा रहे थे।

और तभी उसके भीतर साहस पहली बार जागा। उसने निर्णय लिया कि वह विधवा अवश्य है, पर विवश नहीं। वह अपनी सर्विस के सहारे आगे बढ़ सकती है— और मीरा ससुराल से हमेशा के लिये पीहर आ गई। उसे सुनाने वाले बहुत थे पर अपना कोई न था। ऑफिस के कई युवा कर्मचारी उसे प्रेमभरी नजरों से निहारते, यह भी सुनाते विधवा-विवाह होना चाहिये पर यह सब शाब्दिक जाल था, निगाहों की वासना थी, विवशता का लाभ उठाने वाली थोथी सहानुभूति थी। समय के थपेड़ों ने मीरा को कठोर तथा अनुभवी बना दिया था। वह जान गई थी कि भाषणों की लफ्फाजी और लोगों के वास्तविक कार्यों में कितनी खाई है। उसे एक भी युवक ऐसा नजर नहीं आया जो विधवा-विवाह का साहस कर सके। कई विधुर भी युवा थे पर उनकी दूसरी शादी की आकाशा भी कुंवारी लड़की से शादी की थी। जैसे विधवा को बहू बनाना पाप हो।

मीरा को याद आया कि एक बार उसके न चाहते हुए भी मां ने अपने भतीजो की शादी में मीरा को लेकर गई थी। पर वहां देखा इतना चाहने वाले मामी-मामा में उसके विधवा होने के कारण कितना अन्तर आ गया था वे उसे अजीब नजरो से देखते जैसे वह कोई छूत की बीमारी हो। और बारात वाले दिन मामी ने कहा भी था, 'मीरा दूल्हे की पूजा न हो तब तक अलग कमरे में रहना, बीच में न आना।' उसे सुन कर बहुत ही दुख हुआ था। वैसे ही उसे शादी-ब्याह उत्सव में आना रुचिकर नहीं लगता था। बीते दिनों के घाव हरे हो जाते थे। और उसे आज लगा जैसे ये रिश्तेदार उसके विरुद्ध किसी कत्ल के मुकद्दमें में विरोधी पार्टी के गवाह हों। वह मां को न चाहते हुए भी वापस घर ले आई थी।

मां ने कहा था, 'बेटी इस तरह समाज से, परिवार से कहां तक दूर भागोगी, आखिर रहना तो समाज में ही है। मीरा की तरह गिरधर गोपाल के चरणों में मन लगाओ। वही बेड़ा पार करेगा।' मीरा मां का दिल नहीं तोड़ना चाहती थी सो चुप रही। वह जानती थी कि आज का समाज उस भक्तिकाल से ज्यादा जहरीला है। उस समय भक्ति का तो माहौल था। सत कवि हुए थे यह आधुनिक काल है जहां पग-पग पर भ्रष्टाचारी भेड़िये हैं। वहशी लोग है चाहे दिखने में फिल्मी हीरो ही हैं पर अन्दर किसी शैतान से कम नहीं।

मीरा को इस समाज के जहर को जहर से ही काटना था। उसने सर्विस के साथ पढ़ाई जारी रखी। बी० ए०, एल० एल० बी० करके आर० जे० एस० की प्रतियोगिता परीक्षा दी। और एक समय ऐसा भी आया वह मजिस्ट्रेट बन गई। कुछ और वर्ष बीते। महिला होने के कारण उसे सिविल जज बनने का चास जल्दी ही मिल गया। घर में सभी सुख-सुविधाएं थीं। कार, बंगला, नौकर, फोन आदि। अब वह दो तरह की लड़ाइयां एक साथ लड़ रही थी—एक तरफ तो निर्बलों व त्रस्त परित्यक्ता महिलाओं का साथ दे रही थी तो दूसरी तरफ सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ अपने निर्णय भी दे रही थी। उम्र व समय के साथ-साथ उसके व्यवहार में कठोरता एवं अफसरी अन्दाज आ गया था। बालों की लटें सफेद होने लगी थी।

मीरा ने देखा कि ज्यों-ज्यों उसने उन्नति की है उसके दूर, नजदीक के रिश्तेदार एक अजीब आत्मीयता दिखाने लगे हैं। उसके सास-ससुर-देवर-देवरानियां भी आने-जाने लगे हैं। वे चाहते थे उन्हीं के बच्चों में से किसी एक को गोद ले ले। सबकी नजर उसकी सम्पत्ति पर थी।

मां की मृत्यु से मीरा का आखिरी सम्बन्ध भी बिगड़ गया तो मीरा और ज्यादा एकाकी हो गई। उसकी चट्टानी कठोरता की तहों में भी ममता के अपनत्व की सीलन थी। परन्तु स्वार्थी धनलोलुप रिश्तेदारों के बच्चों को वह नहीं अपनाना चाहती थी। उसकी इच्छा उन अनाथ बच्चों में से किसी को पालने की थी जिसका कोई न हो। और उसी विचार को मूर्त रूप देने वह अनाथ आश्रम से 5 वर्ष की बच्ची को घर ले आई। मीरा ने उसे ममत्व भरे 12 वर्ष दिये। लड़की अब लगभग 16-17 की हो गई थी।

उसे पढ़ा-लिखा कर पावों पर खड़ा होना सिखाया। समय पर होनहार युवक देख लड़की कुमुद की शादी भी कर दी। लेकिन मीरां के भाग्य में एक और झटका बाकी था। ठीक छः महीने बाद कुमुद के पति कार-ट्रक दुर्घटना में मर गये। जैसे एक विराट अंधकार ने सबको लील लिया हो। मीरां कांप उठी थी।

फिर समय से साहस पाकर कुमुद को फिर सधवा बनाने का बीड़ा उसने उठाया। फिर से योग्य लड़का ढूंढ़ कुमुद की शादी। मेहंदी की मुराद पूरी हुई। सिन्दूर की वापसी से एक बार तो फिर अकेली हो गई थी, परन्तु उसे इतना तो भीतरी सन्तोष था कि उसने अपने प्रति किये गये अन्याय का बदला समाज से चुका लिया है।

०००